1.2
गुरु
गीता

गुरु-गीता

अनुवादक :
श्रीराम सिंह
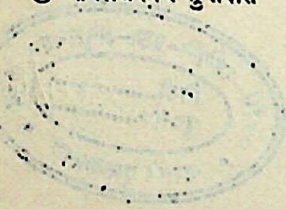
सम्पादक :
डा० सन्तोष टण्डन

प्रकाशक : सन्त निरंकारी मण्डल, प्रकाशन विभाग, दिल्ली-9

निवेदन
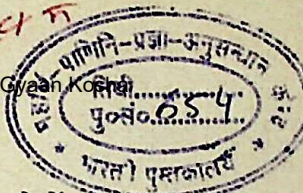
आज के युग में साकार सद्गुरु के बारे में कई भ्रान्तियां फैलाई जा रही हैं। कई पाखण्डी अपने स्वार्थ के लिए गुरु-भक्ति की आड़ में गुरुडम्भ चला रहे हैं। ऐसे समय में इस गुरु-गीता की जानकारी और इसके प्रचार की परम-आवश्यकता दिखाई देती है, क्योंकि गुरु-गीता में सद्गुरु और शिष्य के वास्तविक स्वरूप की भी व्याख्या की गई है।

गुरु-गीता वास्तव में स्कन्द पुराण के उत्तराखण्ड में सन्त कुमार संहिता के तीन अध्याय हैं, इसमें उमा और महेश के संवाद के रूप में गुरु की महिमा वर्णित है।

लखीमपुर खीरी के श्रीराम सिंह जी ने गुरु-गीता का हिन्दी अनुवाद करके बड़े उपकार का कार्य किया है क्योंकि इस विद्वान महापुरुष ने अपने अनुवाद में गुरु-गीता की मूल भावना को दर्शाने का बहुत सुन्दर प्रयास किया है। हम वासुदेव राय, सम्पादक 'एक नज़र' के भी आभारी हैं जिन्होंने इस अनुवाद को सन्त निरंकारी मण्डल की ओर से छपवाने के लिए श्रीराम सिंह जी को प्रेरणा दी।

हमें पूरा विश्वास है कि गुरु-गीता जहां गुरु-भक्तों को मानसिक सुख देगी वहां जनसाधारण को गुरु के महत्व को समझाने में भी सहायक सिद्ध होगी।

निर्मल जोशी
मुख्य सम्पादक
'सन्त निरंकारी'

प्रकाशन विभाग,
सन्त निरंकारी मण्डल,
दिल्ली-110009

दो शब्द

गुरु-गीता स्कन्द पुराण के उत्तर खण्ड का अंग है। गुरु की उपासना से सम्बन्धित यह अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रमाणिक ग्रन्थ है। यद्यपि भगवान निराकार हैं, तथापि समस्त आकार उन्हीं से उत्पन्न और व्याप्त हैं। इस प्रकार वे सर्वमय और सर्वातीत हैं। भगवान की उपासना माता, पिता, सखा, स्वामी आदि रूपों में होती है। वस्तुतः भगवान ही जगत के पिता, माता आदि सब कुछ हैं। जब साधक अपने को पुत्र और भगवान को पिता समझ कर उनकी आराधना करता है, तब भगवान और जीव में पिता-पुत्र भाव माना जाता है। यही भगवान की पिता के रूप में आराधना है। इसी प्रकार अन्य सम्बन्धों के सम्बन्ध में समझना चाहिए। पिता के समान गुरु के रूप में परमात्मा की उपासना होती है। किसी प्रकार की साधना में गुरु का महत्व अप्रतिम है, तथापि गुरु के रूप में परमात्मा की प्राप्ति की साधना एक विशिष्ट साधना है। साधना के इस मार्ग को गुरु-मार्ग कहा गया है। गुरु-गीता में अनेक स्थानों पर इस तथ्य का उल्लेख है।

भगवान अनन्त शक्ति से सम्पन्न हैं और उनके अनन्त रूप हैं। उन रूपों में भगवान के अनुग्रह शक्ति के रूप को गुरु कहा जाता है।

गुरु से ही समस्त ज्ञान अभिव्यक्त होता है। अन्तःकरण में स्थित परमात्मा जीव को उसके अधिकार के अनुसार समय-समय पर ज्ञान प्रदान करते हैं और परम गुरु के माध्यम से अधिकारी शिष्य को ज्ञान देते हैं। ब्रह्मज्ञानी गुरु ब्रह्ममय होता है, अतः ब्रह्म के रूप में उसकी उपासना सर्वथा संगत है।

गुरु-गीता का हिन्दी अनुवाद एक कठिन कार्य है। मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह अनुवाद करने का साहस किया है। सफलता आपकी स्वीकृति पर निर्भर करती है। मैं श्री राम अवतार शर्मा का कृतज्ञ हूं जिनकी प्रेरणा से यह कार्य सम्पन्न हुआ।

श्रीराम सिंह
लखीमपुर खीरी (उ०प्र०)

समर्पण

उन धर्म प्रेमी गुरु-भक्तों को
जो
सर्वव्यापी ईश्वर के
निराकार स्वरूप की आराधना करते हैं
और
परमात्मा के साकार स्वरूप
सद्गुरु में विश्वास रखते हैं।

—श्रीराम सिंह

अचिन्त्याव्यक्तरुपाय निर्गुणाय गुणात्मेन,
समस्तज्गदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ।

पहला अध्याय

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥१॥

अचिन्त्य, अव्यक्त रूप वाले, निर्गुण, सगुण, समस्त जगत के आधार स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है ॥१॥

टिप्पणी—यह श्लोक मंगलाचरण है। ब्रह्म वस्तुतः नामरूपातीत होने से निर्गुण कहा जाता है। जब यह नाम और रूप को अभिव्यक्त करता है, तब यह सगुण बन जाता है। यह गुणातीत होता हुआ भी गुण की अपेक्षा से सगुण कहा जाता है। प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्म के दोनों स्वरूपों का उल्लेख है।

॥ ऋषय ऊचुः ॥

सूत सूत महाप्राज्ञ निगमागमपारगम् ।
गुरुस्वरूपमस्माकं ब्रूहि सर्वमलापहम् ॥२॥

ऋषियों ने कहा—निगम और आगम में पारंगत, महाविद्वान् हे सूत, समस्त मल को दूर करने वाले गुरु के स्वरूप को हमें बताइये ।।२।।

यस्य श्रवणमात्रेण देही दुःखाद्विमुच्यते ।
येन मार्गेण मुनयः सर्वज्ञत्वं प्रपेदिरे ।।३।।

जिसके सुनने से ही जीव दुःख से मुक्त हो जाता है, जिस मार्ग से मुनियों ने सर्वज्ञता को प्राप्त किया ।।३।।

यत्प्राप्य न पुनर्याति नरः संसारबन्धनम् ।
तथाविधं परं तत्वं वक्तव्यमधुना त्वया ।।४।।

मनुष्य जिसको प्राप्त कर पुनः संसार बन्धन में नहीं पड़ता है, उस परम तत्त्व को आप इस समय बताइये ।।४।।

गुह्याद्गुह्यतमं सारं गुरुगीता विशेषतः ।
त्वत्प्रसादाच्च श्रोतव्या तत्सर्वं ब्रूहि सूत नः ।।५।।

हे सूत, गुरु गीता विशेष रूप से गुह्याति-गुह्य सार से युक्त है। वह तुम्हारी कृपा से श्रोतव्य है। हे सूत, उस सब को हमें बताओ ।।५।।

इति संप्रार्थितः सूतो मुनिसंघैर्मुहुर्मुहुः ।
कुतूहलेन महता प्रोवाच मधुरं वचः ।।६।।

मुनि समूह के द्वारा बार-बार प्रार्थना किये जाने पर महान कौतूहल के साथ सूत ने मधुर वचन कहा ।।६।।

॥ सूत उवाच ॥

श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे श्रद्धया परया मुदा ।
वदामि भवरोगघ्नीं गीतां मातृस्वरूपिणीम् ॥७॥

सूत ने कहा—हे समस्त मुनियो परम श्रद्धा और प्रसन्नतापूर्वक सुनो ! मैं संसार रोग को नष्ट करने वाली, मातृस्वरूपिणी गीता को कह रहा हूं ॥७॥

पुरा कैलासशिखरे सिद्धगन्धर्वसेविते ।
तत्र कल्पलतापुष्पमन्दिरेऽत्यन्तसुन्दरे ॥८॥

पहले सिद्धों और गन्धर्वों से सेवित कैलाश पर्वत के शिखर पर अत्यन्त सुन्दर कल्पवृक्ष, लताओं और पुष्पों से युक्त मन्दिर में—॥८॥

व्याघ्राजिने समासीनं शुकादिमुनिवन्दितम् ।
बोधयन्तं परं तत्त्वं मध्ये मुनिगणे क्वचित् ॥९॥
प्रणम्रवदना शश्वन्नमस्कुर्वन्तमादरात् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्ना पार्वती परिपृच्छति ॥१०॥

व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए, शुक आदि मुनियों से पूजित मुनियों के मध्य में परम तत्त्व को समझाते हुए बार-बार नमस्कार करने वाले शंकर को देखकर विस्मित हुई पार्वती ने शिर झुकाकर (शंकर से) पूछा ॥९, १०॥

॥ पार्वत्युवाच ॥

ॐ नमो देव देवेश परात्पर जगद्गुरो ।
त्वां नमस्कुर्वते भक्त्या सुरासुरनराः सदा ॥११॥

पार्वती ने कहा—श्रेष्ठ देवताओं से भी श्रेष्ठ हे जगद्गुरु, हे देवताओं के स्वामी ! आप को नमस्कार है। सदैव देवता, असुर और मनुष्य भक्तिपूर्वक आप को नमस्कार करते हैं ॥११॥

विधिविष्णुमहेन्द्राद्यैर्वन्द्यः खलु सदा भवान्।
नमस्करोषि कस्मै त्वं नमस्काराश्रयः किल ॥१२॥

आप सदैव ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि के द्वारा सदैव निश्चय ही वन्दनीय हैं। नमस्कार के आश्रय आप किसे नमस्कार करते हैं ॥१२॥

दृष्ट्वैतत्कर्म विपुलमाश्चर्यं प्रतिभाति मे।
किमेतन्न विजानेऽहं कृपया वद मे प्रभो ॥१३॥

इस कर्म को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यह क्या है ? मैं नहीं जानती हूं। हे प्रभु, कृपया मुझे बताओ ॥१३॥

भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्रतानां व्रतनायकम्।
ब्रूहि मे कृपया शम्भो गुरुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१४॥

समस्त धर्म को जानने वाले हे भगवन्, हे शम्भो, व्रतों में श्रेष्ठ व्रत, उत्तम गुरु-महत्व को कृपया मुझे बताइये ॥१४॥

केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्ममयो भवेत्।
तत्कृपां कुरु मे स्वामिन्नमामि चरणौ तव ॥१५॥

हे स्वामिन्, किस मार्ग से जीव ब्रह्ममय हो जाता है ? हे स्वामिन, मुझ पर कृपा कीजिए (मुझे बताइये) । मैं आप के चरणों को नमस्कार करती हूं ॥१५॥

इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवो महेश्वरः ।
आनन्दभरतिः स्वान्ते पार्वतीमिदमब्रवीत् ॥१६॥

इस प्रकार बार-बार प्रार्थना किये जाने पर भीतर आनन्द से पूर्ण शंकर ने पार्वती से यह कहा ॥१६॥

टिप्पणी—प्रश्नोत्तर शैली पौराणिक शैली है । प्रश्न से शिष्य की जिज्ञासा सूचित होती है । जिज्ञासु शिष्य को पाकर गुरु बहुत प्रसन्न होता है । इस श्लोक में उसी आनन्द की अभिव्यक्ति है ।

॥ श्री महादेव उवाच ॥

न वक्तव्यमिदं देवि रहस्यातिरहस्यकम् ।
न कस्यापि पुरा प्रोक्तं त्वद्भक्त्यर्थं वदामि तत् ॥१७।

श्री महादेव ने कहा—अत्यन्त गूढ़ इसे नहीं कहना चाहिए । पहले मैंने इसे किसी से नहीं कहा । तुम्हारी भक्ति के कारण मैं तुम्हें उसे (गुरुतत्त्व को) बता रहा हूं ॥१७॥

मम रूपासि देवि त्वमतस्तत्कथयामि ते ।
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥१८॥

हे देवि, तुम मेरा रूप हो, अतः मैं तुम से कहता हूं । पहले किसी ने भी लोक के उपकार के लिए यह प्रश्न नहीं किया ॥१८॥

टिप्पणी—पार्वती स्वयं ज्ञानमूर्ति हैं, परन्तु लोकोपकार के लिए उन्होंने प्रश्न किया। जगत् की माता होने के कारण पार्वती के लिए यह स्वाभाविक प्रतीत होता है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥१९॥

जिसकी ब्रह्म में परम भक्ति होती है, जैसे ब्रह्म में होती है, उसी प्रकार से गुरु में परम भक्ति होती है; उसी महात्मा के हृदय में ये कहे गये विषय प्रकाशित होते हैं ॥१९॥

टिप्पणी—यह श्वेताश्वतरोपनिषद् का मन्त्र है। इसमें गुरु-तत्त्व को हृदयंगम करने के लिए परम गुरु भक्ति और ईश्वर परम भक्ति को आवश्यक माना गया है।

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
विकल्पं यस्तु कुर्वीत स नरो गुरुतल्पगः ॥२०॥

जो गुरु है, वही शिव है, जो शिव है, वही गुरु है। जो शिव और गुरु में भेद करता है, वह गुरु-स्त्रीगामी व्यक्ति के समान पापी होता है ॥२०॥

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तच्छृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरुब्रह्म बिना नान्यः सत्यं सत्यं वरानने ॥२१॥

तीनों लोकों में जो दुर्लभ है, उसे सुनो, मैं कहता हूं। हे सुमुखि, गुरु ब्रह्म है, अन्य नहीं, यही सत्य है ॥२१॥

वेदशास्त्रपुराणानि चेतिहासादिकानि च।
मन्त्रयन्त्रादिविद्यानां मोहनोच्चाटनादिकम् ॥२२॥
शैवशाक्तागमादीनि ह्यन्ये च वहवो मताः।
अपभ्रंशाः समस्तानां जीवानां भ्रान्तचेतसाम् ॥२३॥

वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि, मन्त्र, यन्त्रादि विद्याओं का मोहन, उच्चाटन आदि, शैव, शाक्त, आगम आदि तथा अन्य अनेक मत, भ्रमित चित्त वाले समस्त जीवों को भ्रम में डालने वाले हैं ॥२२, २३॥

टिप्पणी—वेद आदि गुरु के बिना अज्ञान को दूर नहीं कर पाते हैं, अतः उन्हें भ्रमित करने वाला कहा गया है। वस्तुतः ये सभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

जपस्तपो व्रतं तीर्थं यज्ञो दानं तथैव च।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत्प्रिये ॥२४॥

हे प्रिये, जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ और दान—सभी गुरु-तत्त्व को जाने बिना व्यर्थ हो जाते हैं ॥२४॥

गुरुबुद्ध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने।
तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यश्च मनीषिभिः ॥२५॥

हे वरानने, आत्मा और गुरु अभिन्न हैं, यही सत्य है। मनीषियों को उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥२५॥

गूढ़ाविद्या जगन्माया देहश्चाज्ञानसम्भवः।
विज्ञानं यत्प्रसादेन गुरुशब्देन कथ्यते ॥२६॥

गूढ़ अविद्या, जगत की माया और देह अज्ञान से उत्पन्न है। जिसकी कृपा से विज्ञान की प्राप्ति होती है, वही 'गुरु' शब्द से अभिहित किया जाता है ॥२६॥

यदंध्रिकमलद्वन्द्वं द्वन्द्वतापनिवारकम् ॥
तारकं भवसिन्धोश्च तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥२७॥

जिसके युगल चरण-कमल दुःख-सुख आदि द्वन्द्वों और त्रिविध तापों का निवारण करने वाले हैं, जो भवसागर से पार करने वाला है, उस गुरु को मैं प्रणाम करता हूं ॥२७॥

देही ब्रह्म भवेद्यस्मात् त्वत्कृपार्थं वदामि तत् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात् ॥२८॥

जिससे जीव ब्रह्म हो जाता है, उसे मैं तुम्हारे प्रति अनुग्रह के कारण कह रहा हूं। श्री गुरु की चरण-सेवा से जीव समस्त पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है ॥२८॥

टिप्पणी— गुरु के माध्यम से भगवान् की अनुग्रह शक्ति जीव को बन्धन से मुक्त कर ब्राह्मी स्थिति में प्रतिष्ठित करती है, अतः गुरु और ब्रह्म अभिन्न हैं। इस प्रकार गुरु की पूजा को भगवान की पूजा कहा जा सकता है।

सर्वतीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः ।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयन् ॥२९॥

गुरु के चरणोदक को पीकर और शेष चरणोदक को शिर पर धारण करने से मनुष्य समस्त तीर्थों के स्नान के फल को प्राप्त कर लेता है ॥२९॥

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसः ।
गुरोः पादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम् ॥३०॥

गुरु का चरणोदक पाप रूपी पंक को सुखाने वाला, ज्ञानाग्नि को दीप्त करने वाला तथा सम्यक् रूप से संसार-सागर से पार करने वाला है ॥३०॥

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम् ।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ॥३१॥

अज्ञान-मूल को नष्ट करने वाले, जन्म कर्म का निवारण करने वाले; ज्ञान और वैराग्य को प्रदान करने वाले गुरु के चरणोदक को पीना चाहिए ॥३१॥

गुरुपादोदकं पानं गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं गुरोर्नाम्नः सदा जपः ॥३२॥

गुरु के चरणोदक का पान, गुरु का जूठा भोजन, गुरु-मूर्ति का ध्यान और गुरु-नाम का जप सदैव करना चाहिए ॥३२॥

स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनं भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम् ।
स्वदेशिकस्यैव च नामचिंतनं भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम्
॥३३॥

अपने गुरु का नाम-कीर्तन अनन्त शिव का कीर्तन होता है । अपने गुरु का नाम-चिन्तन अनन्त शिव का नाम-चिन्तन होता है ॥३३॥

यत्पादरेणुर्वै नित्यं कोऽपि संसारवारिधौ ।
सेतुबन्धायते नाथं देशिकं तमुपास्महे ।।३४।।

जिसके चरणों की धूलि, निश्चय ही संसार-सागर के लिए सेतु है, उस गुरु की मैं उपासना करता हूं ।।३४।।

यदनुग्रहमात्रेण शोकमोहौ विनश्यतः ।
तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय नमोऽस्तु परमात्मने ।।३५।।

जिसके अनुग्रह मात्र से शोक और मोह नष्ट हो जाते हैं, उस परमात्मा श्रीगुरु को नमस्कार है ।।३५।।

यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा महदज्ञानमुत्सृजेत् ।
तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय नमश्चाभीष्टसिद्धये ।।३६।।

जिससे अनुग्रह प्राप्त कर मनुष्य महान् अज्ञान से मुक्त हो जाता है, अभीष्ट को सिद्ध करने वाले उस श्रेष्ठ श्रीगुरु को नमस्कार है ।।३६।।

काशीक्षेत्रं निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम् ।
गुरुविश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चयः ।।३७।।

गुरु का निवास काशी क्षेत्र है, गुरु का चरणोदक गंगा है, गुरु साक्षात् शंकर हैं और गुरु का ब्रह्म-प्रतिपादन तारक ब्रह्म है ।।३७।।

गुरुसेवा गया प्रोक्ता देहः स्यादक्षयो वटः ।
तत्पादं विष्णुपादं स्यात् तत्र दत्तमनन्तकम् ।।३८।।

गुरु-सेवा को गया कहा गया है, गुरु-देह अक्षयवट है, गुरु-पाद विष्णु-पाद है और वह गुरुपाद अनन्त फलदायक है ।।३८।।

गुरुमूर्ति स्मरेन्नित्यं गुरोर्नाम सदा जपेत् ।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत् ।।३९।।

गुरु-मूर्ति का नित्य स्मरण करना चाहिए, गुरु-नाम का सदा जप करना चाहिए, गुरु की आज्ञा मानना चाहिए और गुरु से भिन्न भावना न करनी चाहिए ।।३९।।

गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः ।
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् कुलस्त्री स्वपतिं यथा ।।४०।।

गुरु-मुख में स्थित ब्रह्म गुरु-कृपा से प्राप्त होता है । जैसे कुलांगना अपने पति का ध्यान करती है उसी प्रकार से गुरु का ध्यान करना चाहिए ।।४०।।

टिप्पणी—ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु उसका उल्लेख पृथक्-पृथक् स्थान पर भी किया जाता है । गुरु-मुख से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, अतः गुरु-मुख में ब्रह्म का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है ।

स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टिवर्धनम् ।
एतत्सर्वं परित्यज्य गुरुमेव समाश्रयेत् ।।४१।।

अपना आश्रम, अपनी जाति, अपनी कीर्ति और पुष्टिकारक, इन सबका त्याग कर गुरु का आश्रय लेना चाहिए ।।४१।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो ये सुलभं परमं सुखम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु ।।४२।।

गुरु के अनन्य चिन्तन से परमानन्द की प्राप्ति होती है, अतः पूर्ण प्रयत्न से गुरु की आराधना करो ।।४२।।

गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्या च लभ्यते ।
त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवर्षिपितृमानवा: ।।४३।।

गुरु-मुख में स्थित विद्या गुरु-भक्ति से प्राप्त होती है। देव, ऋषि, पितर और मानव इसे स्पष्ट रूप से बताते हैं ।।४३।।

टिप्पणी—गुरु ईश्वर का रूप है, अतः गुरु-भक्ति ईश्वर-भक्ति के समान सर्वस्व-दायिका है ।

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते ।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः ।।४४।।

'गु' अन्धकार है, 'रु' तेज कहा जाता है, निस्संदेह अज्ञान को नष्ट करने वाला गुरु ही ब्रह्म है ।।४४।।

गुकारो भवरोग स्यात् रुकारस्तन्निरोधकृत् ।
भवरोहरत्वाच्च गुरुरित्यभिधीयते ।।४५।।

'गु' भवरोग है और 'रु' उसे नष्ट करने वाला है। भव-रोग को नष्ट करने के कारण (उसे) गुरु कहते हैं ।।४५।।

गुकारश्च गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः ।
गुणरूपविहीनत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।४६।।

'गु' गुणातीत है और 'रु' रूपातीत है। गुण-रूप से रहित होने के कारण गुरु कहा जाता है ।।४६।।

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारोऽस्ति परं ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचनम् ।।४७।।

'गु' माया आदि की प्रतीति कराने वाला प्रथम वर्ण है और 'रु' माया-भ्रम को नष्ट करने वाला पर-ब्रह्म है ।।४७।।

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभम् ।
गरुडोरगगन्धर्वसिद्धादिसुरपूजितम् ।।४८।।

इस प्रकार गरुड़, सर्प, गन्धर्व, सिद्धादि और देवताओं से पूजित श्रेष्ठ 'गु' शब्द देवताओं के लिए दुर्लभ है ।।४८।।

ध्रुवं देवि मुमुक्षूणां नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।
गुरोराराधनं कुर्यात् स्वजीवत्वं निवेदयेत् ।।४९।।

हे देवि, निश्चय ही मुमुक्षुओं (मुक्ति की इच्छा वालों) के लिए गुरु से बढ़कर तत्त्व नहीं है । गुरु की आराधना करनी चाहिए और उसे अपने (स्वजीवत्व) को समर्पित करना चाहिए ।।४९।।

आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणादिकम् ।
साधकेन प्रदातव्यं गुरुसन्तोषकारणम् ।।५०।।

साधक को गुरु को प्रसन्न करने के लिए आसन, शयन, वस्त्र, वाहन, भूषण आदि गुरु को देना चाहिए ।।५०।।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वदाऽऽराधयेद्गुरुम् ।
दीर्घदण्डं नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ ।।५१।।

मनुष्य को लज्जारहित होकर गुरु के समीप दीर्घ दण्ड के समान पड़कर नमस्कार कर कर्म, मन और वाणी से सर्वदा गुरु की आराधना करनी चाहिए ।।५१।।

टिप्पणी—दीर्घ दण्ड के समान पड़कर नमस्कार करना ही साष्टांग नमस्कार है।

शरीरमिन्द्रियं प्राणमर्थस्वजनवान्धवान् ।
आत्मदारादिकं सर्वं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ।।५२।।

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अर्थ, स्वजन, वान्धव, स्वयं और स्त्री आदि सभी को अर्थात् तन-मन-धन सद्गुरु को समर्पित करना चाहिए ।।५२।।

गुरुरेको जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूजयेद्गुरुम् ।।५३।।

एक मात्र गुरु-ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय समस्त जगत है। गुरु से बढ़कर तत्त्व नहीं है, अतः गुरु की पूजा करनी चाहिए ।।५३।।

टिप्पणी—जगत् ब्रह्ममय है। गुरु और ब्रह्म के अभेद के कारण जगत् को गुरु का रूप कहा जाता है।

सर्वश्रुतिशिरो-रत्न-विराजित-पदाम्वुजम् ।
वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात् संपूजयेद्गुरुम् ।।५४।।

गुरु के चरण-कमल समस्त श्रुतियों के शिरोरत्न से शोभित हैं। वे वेदान्त के अर्थ के वक्ता हैं। अतः गुरु की पूजा करनी चाहिए ।।५४।।

यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
स एव सर्वसंपत्तिः तस्मात्संपूजयेद्गुरुम् ।।५५।।

जिसके स्मरण मात्र से ज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है, वे समस्त सम्पत्ति हैं, अतः गुरु की उपासना करनी चाहिए। ।।५५।।

कृमिकोटिभिराविष्टं दुर्गन्धकुलदूषितम् ।
अनित्यं दुःखनिलयं देहं विद्धि वरानने ।।५६।।

हे सुमुखि, देह को करोड़ों कृमियों से युक्त, दुर्गन्ध से दूषित, अनित्य और दुःख का आश्रय समझो ।।५६।।

संसार-वृक्षमारूढाः पतन्ति नरकार्णवे ।
यस्तानुद्धरते सर्वान् तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।५७।।

संसार-वृक्ष पर आरूढ़ व्यक्ति नरक रूपी समुद्र में गिरता है। जो उन सबको बचाता है, उन श्रीगुरु को नमस्कार है ।।५७।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।५८।।

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु शंकर और गुरु ही पर-ब्रह्म है; उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।५८।।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।५९।।

अज्ञान रूपी तिमिर-रोग से ग्रस्त मनुष्य के नेत्र को जो ज्ञान रूपी अंजनशलाका से खोलता है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।५९।।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।६०।।

अखण्ड मण्डल के आकार वाला चराचर जगत जिससे व्याप्त है, 'तत्' पद (ब्रह्म) को जो दिखाता है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।६०।।

टिप्पणी—छांदोग्य उपनिषद् के छठे अध्याय में 'तत्त्वमसि' (वह ब्रह्म तुम्हीं हो) का प्रतिपादन मिलता है। आरुणि ने श्वेतकेतु से कहा कि तुम्हीं परब्रह्म हो। यहां 'तत्' पद ब्रह्म का वाचक है, 'त्वं' पद जीव का वाचक है। ६०, ६१, ६२ श्लोक में तत्-त्वं-असि (तत्त्वमसि) का उल्लेख है। गुरु के द्वारा ही तत्त्वमसि का बोध होता है।

स्थावरं जंगमं व्याप्तं यत्किंचित्सचराचरम् ।
त्वंपदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।६१।।

समस्त जड़, चेतन जगत जिससे व्याप्त है, जो 'त्वं' पद को दिखाता है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।६१।।

चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
असित्वं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।६२।।

चर, अचर त्रिलोक चेतन जगत जिससे व्याप्त है, जो 'असि' पद को दिखाता है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।६२।।

निमिषान्निमिषार्धाद्वा यद्वाक्याद्वै विमुच्यते ।
स्वात्मानं शिवमालोक्य तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६३॥

जिसके वाक्य से निमेष अथवा अर्द्ध निमेष में जीव आत्म-स्वरूप शिव को जानकर मुक्त हो जाता है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ॥६३॥

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
नादविन्दुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६४॥

जो चेतन, नित्य, शान्त, आकाशातीत, निर्मल, नाद, विन्दु और कला से अतीत है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ॥६४॥

निर्गुणं निर्मलं शान्तं जंगमं स्थिरमेव च ।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६५॥

जो निर्गुण, निर्मल और शान्त है, जिससे समस्त जड़-चेतन जगत् व्याप्त है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ॥६५॥

स पिता स च मे माता स वन्धुः स च देवता ।
संसारमोहनाशाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६६॥

वही गुरु पिता है, वही माता है, वही वन्धु है और वही देवता है। संसार-मोह को नष्ट करने वाले उस श्रीगुरु को नमस्कार है ॥६६॥

यत्सत्वेन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत् ।
यदानन्देन नंदन्ति तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥६७॥

जिसकी सत्ता से जगत् की सत्ता है, जिसके प्रकाश से वह (जगत) प्रकाशित होता है, जिसके आनन्द से लोग आनन्दित होते हैं, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।६७।।

यस्मिन् स्थितमिदं सर्वं भाति यद्भानरूपतः ।
प्रियं पुत्रादि यत्प्रीत्या तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।६८।।

जिसमें स्थित यह सब जिसके प्रकाश रूप से प्रकाशित होता है, जिसके प्रेम से पुत्र आदि प्रिय हैं, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।६८।।

येनेदं दर्शितं तत्त्वं चित्तचैत्यादिकं तथा ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।६९।।

जिसने यह तत्त्व (आत्मा), चित्त, चैत्य (चित्त के विषय) आदि, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि को दिखाया, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।६९।।

यस्य ज्ञानमिदं विश्वं न दृश्यं भिन्नभेदतः ।
सदैकरूपरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ।।७०।।

जिसका ज्ञान यह विश्व है, जो भेद रहित होने के कारण दृश्य नहीं है, एकमात्र सत् रूप वाले उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७०।।

टिप्पणी—जगत् में द्रष्टा और दृश्य का भेद रहता है। ब्रह्म भेदातीत होने से दृश्य नहीं है।

यस्य ज्ञातं मतं तस्य मतं यस्य न वेद सः ।
अनन्यभावभावाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७१।।

जिसे ब्रह्म का ज्ञान हो गया है, वही ब्रह्मज्ञानी है। जिसे ब्रह्मज्ञान का अभिमान है, वह ब्रह्मज्ञानी नहीं है। अनन्य (अभेद) भाव वाले उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७१।।

यस्मै कारणरूपाय कार्यरूपेण भाति यत् ।
कार्यकारणरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७२।।

जिस कारण-रूप के लिए कार्य-रूप (जगत्) से जो प्रतीत होता है, कार्यकारणात्मक उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७२।।

टिप्पणी—ब्रह्म कारण और जगत् कार्य है। कार्य और कारण के अभेद से गुरु उभय रूप वाला है।

नानारूपमिदं विश्वं न केनाप्यस्ति भिन्नता ।
कार्यकारणरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७३।।

नाना रूप वाला जगत् जिससे अभिन्न है, कार्य, कारण रूप वाले उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७३।।

ज्ञानशक्तिसमारूढ़तत्त्वमालाविभूषिणे ।
भुक्तिमुक्तिप्रदात्रे च तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७४।।

ज्ञानशक्ति से सम्पन्न, तत्त्वों से भूषित, और मुक्ति को प्रदान करने वाले उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७४।।

अनेकजन्मसंप्राप्तकर्मबंधविदाहिने ।
ज्ञानानलप्रभावेन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७५।।

ज्ञानाग्नि के प्रभाव से अनेक जन्म से प्राप्त कर्म-बन्धन को नष्ट करने वाले उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७५।।

शोषणं भवसिन्धोश्च दीपनं क्षरसंपदाम् ।
गुरोः पादोदकं यस्य तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७६।।

जिस गुरु का चरणोदक भवसागर को सुखाने वाला, विनाशी सम्पत्ति को दीप्त करने वाला है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७६।।

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
न गुरोरधिकं ज्ञानं तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७७।।

गुरु से बढ़कर तत्त्व नहीं है, गुरु से बढ़कर तप नहीं है, गुरु से बढ़कर ज्ञान नहीं है, उस गुरु को नमस्कार है ।।७७।।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरु श्रीजगद्गुरुः ।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवेनमः ।।७८।।

मेरे स्वामी ही श्रीभगवान हैं, मेरे गुरु ही जगद्गुरु है, मेरी आत्मा ही समस्त प्राणियों की आत्मा है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।७८।।

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरुमंत्रसमो नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७९।।

गुरु ही आदि और अनादि है, गुरु ही परमदेवता है गुरु-मन्त्र के समान (मन्त्र) नहीं है, उस श्री गुरु को नमस्कार है ।।७९।।

एक एव परो बंधुर्विषमे समुपस्थिते ।
गुरुः सकलधर्मात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।८०।।

समस्त धर्मस्वरूप अकेला गुरु ही संकट पड़ने पर परम वन्धु है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।८०।।

गुरुमध्ये स्थितं विश्वं विश्वमध्ये स्थितो गुरुः ।
गुर्विश्वं न चान्योऽस्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।८१।।

गुरु में विश्व स्थित है, विश्व में गुरु स्थित है, गुरु और विश्व अभिन्न हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार है ।।८१।।

भवारण्यप्रविष्टस्य दिङ्मोहभ्रान्तचेतसः ।
येन सन्दर्शितः पन्थाः तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।८२।।

संसार-वन में प्रविष्ट, दिग्भ्रम के कारण भ्रमित चित्त वाले जीव को जो मार्ग दिखाता है, उस श्री गुरु को नमस्कार ।।८२।।

तापत्रयाग्नितप्तनामशांतप्राणिनां भुवि ।
यस्य पादोदकं गंगा तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।८३।।

जिसका चरणोदक पृथ्वी पर तीनों ताप रूपी अग्नि से तप्त अशान्त प्राणियों के लिए गंगा है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है ।।८३।।

टिप्पणी—ताप (दुःख) तीन प्रकार के होते हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक । शारीरिक ताप आध्यात्मिक ताप, सर्प आदि से होने वाला ताप अधिभौतिक है और ग्रह आदि से होने वाला ताप आधिदैविक ताप है ।

अज्ञानसर्पदष्टानां प्राणिनां कश्चिकित्सकः ।
सम्यग्ज्ञानमहामंत्रवेदिनं सद्गुरुं विना ।।८४।।

अज्ञान रूपी सर्प से डसे गये प्राणी के लिए सम्यक् ज्ञान-रूपी महामन्त्र को जानने वाले सद्गुरु के विना कौन चिकित्सक है ? ।।८४।।

हेतवे जगतामेव संसारार्णवसेतवे ।
प्रभवे सर्वविद्यानां शंभवे गुरवे नमः ।।८५।।

जगत् के कारण, संसार-सागर से पार करने वाले सेतु, समस्त विद्याओं के कारण गुरु शंकर को नमस्कार है ।।८५।।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मुक्तिमूलं गुरोः कृपा ।।८६।।

गुरु की मूर्ति ध्यान का मूल है, गुरु-पद पूजा का मूल है, गुरु-वाक्य मन्त्र-मूल है और गुरु-कृपा मुक्ति का मूल है ।।८६।।

सप्तसागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं तु यत् ।
गुरुपादपयोबिन्दोः सहस्रांशेन तत्फलम् ।।८७।।

सात सागर पर्यन्त तीर्थों के स्नान का जो फल होता है, वह फल गुरु-चरण के जलविन्दु के सहस्रांश के समान है ।।८७।।

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यग्गुरुमेव समाश्रयेत् ।।८८।।

शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करते हैं, परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता है, अतः सम्यक् कुल-गुरु को प्राप्त कर गुरु का आश्रय लेना चाहिए ।।८८।।

टिप्पणी—(कुल-परम्परागत) पूर्ण गुरु को कुल-गुरु कहते हैं ।

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥८९॥

जैसे मधुलोलुप भ्रमर एक पुष्प से दूसरे पुष्प को जाता है, उसी प्रकार ज्ञानलोभी शिष्य एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाता है ॥८९॥

टिप्पणी—ज्ञान लोलुप शिष्य को अज्ञानी गुरु को त्याग कर ज्ञानी गुरु के पास जाना चाहिए, तथापि दीक्षादाता ज्ञानी गुरु का त्याग उपयुक्त नहीं है ।

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं वाङ्मनोतीतगोचरम् ।
श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं शिवशक्त्यात्मकं परम् ॥९०॥

मन, वाणी और इन्द्रियों से अतीत, श्वेतरक्त प्रभा से युक्त परम शिवशक्त्यात्मक गुरु-चरण युगल को नमस्कार है ॥९०॥

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम् ।
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः ॥९१॥

'गु' गुणातीत और 'रु' अरूप है, गुणातीत और अरूप को जो प्रदान करता है, वही गुरु है ॥९१॥

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षात् द्विबाहुश्च हरिः स्मृतः ।
योऽचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः कथितः प्रिये ॥९२॥

हे प्रिये, श्रीगुरु तीन नेत्ररहित साक्षात् शिव हैं, दो हाथों वाले विष्णु हैं और चार मुख से रहित ब्रह्मा कहे गये हैं ॥९२॥

अयं मयाञ्जलिर्बद्धो दयासागरसिद्धये ।
यदनुग्रहतो जंतुश्चित्रसंसारमुक्तिभाक् ।।९३।।

दया-सागर की प्राप्ति के लिए मैंने यह हाथ जोड़ा है, जिसके अनुग्रह से जीव विचित्र संसार से मुक्त हो जाता है ।।९३।।

श्रीगुरोः परमं रूपं विवेकचक्षुरग्रतः ।
मंदभाग्या न पश्यन्ति अन्धाः सूर्योदयं यथा ।।९४।।

श्रीगुरु के परम रूप को मन्द भाग्य वाले, विवेक रूपी नेत्र के समक्ष नहीं देख पाते हैं, जैसे अन्धा सूर्योदय को नहीं देख पाता है ।।९४।।

कुलानां कुलकोटीनां तारकस्तत्र तत्क्षणात् ।
अतस्तं सद्गुरुं ज्ञात्वा त्रिकालमभिवादयेत् ।।९५।।

गुरु करोड़ों कुल परम्परा को तुरन्त तार देता है, अतः उस सद्गुरु को जानकर तीनों सन्ध्याओं में अभिवादन करना चाहिए ।।९५।।

श्रीनाथचरणद्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते ।
तस्यां दिशि नमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये ।।९६।।

हे प्रिये, गुरु के चरण-युगल जिस दिशा में शोभित होते हैं, उस दिशा में प्रतिदिन नमस्कार करना चाहिए ।।९६।।

साष्टांगप्रणिपातेन स्तुवन्नित्यं गुरुं भजेत् ।
भजनात्स्थैर्यमाप्नोति स्वस्वरूपमयो भवेत् ।।९७।।

साष्टांग नमस्कार से स्तुति करते हुए नित्य गुरु को भजना चाहिए, भजन से स्थिरता की प्राप्ति होती है और साधक अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है ॥९७॥

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ।
मनसा वचसा चेति प्रणामोष्टांग उच्यते ॥९८॥

हाथ, पैर, जानु (घुटना), वक्षस्थल, शिर, दृष्टि, मन और वाणी से प्रणाम अष्टांग प्रणाम कहा जाता है ॥९८॥

तस्यै दिशे सततमञ्जलिरेष नित्यं
प्रक्षिप्यतां मुखरितैर्मधुरैः प्रसूनैः ।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वस्थितिप्रलयनाटकनित्यसाक्षी ॥९९॥

मधुर, मुखरित पुष्पों से युक्त यह अञ्जलि उस दिशा में निरन्तर अर्पित करें जहां विश्व के पालन और प्रलय के नाटक के नित्य साक्षी गुरुचक्रवती भगवान जगते है ॥९९॥

अभ्यस्तैः किमु दीर्घकालविमलैर्व्याधिप्रदैर्दुष्करैः
प्राणायामशतैरनेककरणैर्दुःखात्मकैर्दुर्जयैः ।
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणात्
प्राप्तुं तत्सहजस्वभावमनिशं सेवेत चैकं गुरुम् ॥१००॥

दीर्घकाल से निर्मल, व्याधिकर, दुष्कर, अनेक साधनों वाले, दुःखात्मक, दुर्जय सैकड़ों प्राणायामों के अभ्यास से ? जिसके उदित होने पर बलवान वायु तुरन्त नष्ट हो

जाती है, उस सहज स्वभाव को प्राप्त करने के लिए निरन्तर एक गुरु का सेवन करना चाहिए ॥१००॥

टिप्पणी—प्राणायाम योग में उपयोगी है, परन्तु वह गुरु-पूजा में अनिवार्य नहीं है। प्राणायाम आदि क्रियायें जटिल होती हैं।

ज्ञानं विना मुक्तिप ं लभ्यते गुरुभक्तितः।
गुरोः प्रसादतो नान्यत् साधनं गुरुमार्गिणाम् ॥१०१॥

ज्ञान के विना गुरु-भक्ति से मुक्ति की प्राप्ति होती है। गुरु मार्गियों के लिए गुरु के अनुग्रह के विना मुक्ति नहीं है ॥१०१॥

टिप्पणी—साधना में प्रमुख रूप से गुरु-पूजा ही गुरुमार्गी साधना है।

यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः।
मनसा वचसा चैव सत्यमाराधयेद्गुरुम् ॥१०२॥

श्रुति में 'नेति नेति' कहकर जिस तत्त्व की ओर संकेत किया गया है और जिससे श्रेष्ठ कुछ नहीं है, वह तत्त्व वास्तव में गुरु ही है इसलिए मन, वचन व कर्म में गुरु की आराधना करनी चाहिए ॥१०२॥

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्माविष्णुशिवादयः।
सामर्थ्यमभजन् सर्वे सृष्टिस्थित्यन्तकर्मणि ॥१०३॥

गुरु की कृपा से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी सृष्टि, पालन तथा संहार कार्य में सामर्थ्य प्राप्त करते हैं ॥१०३॥

देवकिन्नरगन्धर्वाः पितृयक्षास्तु तुम्बुरुः ।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम् ॥१०४॥

देव, किन्नर, गन्धर्व, पितृ, यक्ष, तुम्बुर और मुनि भी गुरु सेवा की विधि को नहीं जानते हैं ॥१०४॥

तार्किकाश्छान्दसाश्चैव दैवज्ञाः कर्मठाः प्रिये ।
लौकिकास्ते न जानन्ति गुरुतत्त्वं निराकुलम् ॥१०५॥

तार्किक (नैय्यायिक), छान्दस (वैदिक), दैवज्ञ, कर्मकाण्डी, तथा लौकिक (लोक विद्याओं में पारंगत) गुरु तत्व को पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं ॥१०५॥

महाहंकारगर्वेण तपोविद्यावलेन च ।
भ्रमन्त्येतस्मिन् संसारे घटीयंत्रं यथा पुनः ॥१०६॥

तपस्या और विद्यावल से, महान अहंकार और अभिमान से मनुष्य कुम्हार के चक्के पर चढ़े वर्तनों की भाँति संसार में वार वार घूमता है ॥१०६॥

यज्ञिनोऽपि न मुक्ताः स्युः न मुक्ता योगिनस्तथा ।
तापसा अपि नो मुक्ता गुरुतत्त्वात्पराङ्मुखाः ॥१०७॥

गुरु-तत्व से विमुख यज्ञ करने वाले याज्ञिक व योगी मुक्त न ही होते और नहीं ऐसे तपस्वी मुक्त होते हैं ॥१०७॥

न मुक्तास्तु गन्धर्वाः पितृयक्षास्तु चारणाः ।
ऋषयः सिद्धदेवाद्याः गुरुसेवापराङ्मुखाः ॥१०८॥

गुरु-सेवा से विमुख गन्धर्व, पितृ, यक्ष, चरण, ऋषि, सिद्ध, देव आदि भी संसार चक्र से मुक्ति नहीं पा सकते ॥१०८॥

इति श्रीस्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वर संवादे
श्री गुरुगीतायां प्रथमोऽध्याय

इति स्कन्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वर-संवादे श्रीगुरु-गीतायां प्रथमोऽध्यायः ॥

श्री स्कन्दपुराण के उत्तर खण्ड के अन्तर्गत उमा और महेश्वर के संवाद गुरु-गीता से प्रथम अध्याय की समाप्ति हुई।

दूसरा अध्याय

ध्यानं श्रुणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम् ।
सर्वसौख्यकरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१०९॥

हे महादेवि, समस्त आनन्द को देने वाले, समस्त सुख को प्रदान करने वाले एवं भोग और मोक्ष को देने वाले ध्यान के विषय में सुनो ॥१०९॥

श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं स्मरामि श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं भजामि ।
श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं वदामि श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं नमामि ॥११०॥

मैं परब्रह्म गुरु का स्मरण करता हूं, परब्रह्म गुरु का भजन करता हूं, मैं परब्रह्म गुरु के सम्बन्ध में कहता हूं, और परब्रह्म श्रीगुरु को नमस्कार करता हूं ॥११०॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१११॥

ब्रह्मानन्दमय, परम सुख देने वाले, कैवल्य में स्थित, ज्ञान की मूर्ति, सुख दुःखादि द्वन्द्वो से अतीत, आकाश के समान, "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों के लक्ष्य, एक, नित्य, निर्मल, अचल बुद्धि की समस्त वृत्तियों के साक्षी, भावातीत, त्रिगुण-रहित उस सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं ॥१११॥

हृदम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थे
सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम् ।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकलाप्रकाशं
सच्चित्सुखाभीष्टवरं दधानम् ॥११२॥

कर्णिका के मध्य में हृदयकमल के सिंहासन पर दिव्य मूर्ति वाले, चन्द्रकला के समान, सच्चिदानन्द के अभीष्ट वर को धारण करने वाले गुरु का ध्यान करना चाहिए ॥११२॥

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं
मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम् ।
वामांकपीठस्थितदिव्यशक्ति
मन्दस्मितं पूर्णकृपानिधानम् ॥११३॥

ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ।।११४।।

श्वेत वस्त्र से युक्त, श्वेत लेप और पुष्प से युक्त, मुक्ता से भूषित, प्रसन्न, दो नेत्रों वाले, आसन पर वाम-भाग में दिव्य शक्ति से सुशोभित मन्द मुस्कान वाले, पूर्ण कृपा से युक्त ।।११३।।

ज्ञानस्वरूप, स्वभाव में प्रतिष्ठित, आनन्दस्वरूप, आनन्द देने वाले, प्रसन्न, योगियों में श्रेष्ठ, स्तुत्य, संसार-रोग के वैद्य श्री सद्गुरु को मैं नित्य नमस्कार करता हूं ।।११४।।

टिप्पणी—श्लोक ११३, ११४ में एक ही वाक्य हैं ।

वन्दे गुरूणां चरणारविन्दं संदर्शितस्वात्मसुखांबुधीनाम् ।
जनस्य येषां गुलिकायमानं संसारहालाहलमोहशान्त्यै ।।११५।।

आत्मा के आनन्द-सागर को प्रदर्शित करने वाले, प्राणियों के संसार रूपी विष के मोह की शान्ति के लिए औषध की गोली के समान गुरु के चरणकमल को मैं नमस्कार करता हूं ।।११५।।

यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंसनिग्रहानुग्रहात्मकम् ।
कृत्यं पञ्चविधं शश्वत् भासते तं गुरुं भजेत् ।।११६।।

जिसमें सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह और अनुग्रह ये पंच-कर्म निरन्तर प्रतीत होते हैं, उस गुरु को भजना चाहिए । ।।११६।।

टिप्पणी—तन्त्रों में सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह और अनुग्रह—ये पांच कर्म ब्रह्म के प्रमुख रूप से बताये गये है।

पादाब्जे सर्वसंसारदावकालानलं स्वके।
ब्रह्मारन्ध्रे स्थिताम्भोजमध्यस्थं चन्द्रमण्डलम् ॥११७॥

गुरु के अपने चरणकमल में समस्त संसार की दावाग्नि है और ब्रह्मरन्ध्र में कमल के भीतर चन्द्रमण्डल है ॥११७॥

टिप्पणी—कुण्डलिनी, ब्रह्मरन्ध्र आदि के विस्तत ज्ञान के लिए योग के ग्रन्थ को देखना चाहिए।

अकथादित्रिरेखाब्जे सहस्रदलमण्डले।
हंसपार्श्वत्रिकोणे च स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम् ॥११८॥

अकथ आदि से युक्त त्रिरेखा-कमल के सहस्रदल-मण्डल पर हंसपार्श्वत्रिकोण के मध्य में गुरु का स्मरण करना चाहिए ॥११८॥

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥११९॥

नित्य, शुभ्र, निराभास, निराकार, निर्मल, नित्यबोध-स्वरूप चिदानन्दमय ब्रह्म गुरु को मैं नमस्कार करता हूं। ॥११९॥

सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषसृष्टि-
निखिलनिगमदृष्टिः सत्पदार्थैकसृष्टिः।
अतद्गणपरमेष्टिः सत्पदार्थैकदृष्टिः,
भवगुणपरमेष्टिर्मोक्षमार्गैकदृष्टिः ॥१२०॥

समस्त भुवनों की सृष्टि करने वाली, समस्त सृष्टि की कल्पना करने वाली, समस्त वेदों के ज्ञान से युक्त, सत्पदार्थों की एकमात्र रचना करने वाले, अभिन्न परम इष्ट से युक्त, सत्पदार्थों की दृष्टि वाली, संसार के गुणों में परम इष्ट मोक्षमार्ग की एकमात्र दृष्टि वाली ॥१२०॥

सकलभुवनरंगस्थापनास्तम्भयष्टिः,
सकरुणरसवृष्टिस्तत्त्वमालासमष्टिः ।
सकलसमयसृष्टिस्सच्चदानन्ददृष्टिः,
निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः ॥१२१॥

समस्त भुवन के रंगमंच के स्तम्भ को स्थापित करने वाली, करुणा को वरसाने वाली, तत्त्वसमूह से युक्त, सच्चिदानन्द की दृष्टि वाली श्रीगुरु की दिव्य दृष्टि मुझमें नित्य निवास करे ॥१२१॥

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।
शिवशासनतः शिवशासनतः
शिवासनतः शिवशासनतः ॥१२२॥

शिव के शासन के अनुसार गुरु से महान कुछ नहीं है। ॥१२२॥

टिप्पणी—श्लोक १२२, १२३, १२४ में एक ही तथ्य, वल देने के लिए चार बार कहा गया है।

इदमेव शिवं इदमेव शिवं इदमेव शिवं इदमेव शिवम् ।
हरिशासनतो हरिशासनतो हरिशासनतो हरिशासनतः ॥१२३॥

विष्णु के आदेश के अनुसार यही कल्याणकारी है ॥१२३॥

विदितं विदितं विदितं विदितं
विजनं विजनं विजनं विजनम् ।
विधिशासनतो विधिशासनतो
विधिशासनतो विधिशासनतः ॥१२४॥

ब्रह्मा के आदेश के अनुसार यही एक सत्य प्रतीत होता है ॥१२४॥

एवंविधं गुरुं ध्यात्वा ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
तदा गुरुपदेशेन मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥१२५॥

ऐसें गुरु का ध्यान करने पर ज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है । उस समय गुरु के उपदेश से 'मैं मुक्त हूं', ऐसी भावना करनी चाहिए ॥१२५॥

गुरुपदष्टिमार्गेण मनःशुद्धिं तु कारयेत् ।
अनित्यं खण्डयेत् सर्वं यत्किंचिदात्मगोचरम् ॥१२६॥

गुरु के उपदिष्ट मार्ग से मन को शुद्ध करना चाहिए । आत्मा के ज्ञान से समस्त अनित्य विषय का खण्डन (उपेक्षा) करना चाहिए ॥१२६॥

ज्ञेयं सर्वं प्रतीतं च ज्ञानं च मन उच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्यान्नान्यः पन्था द्वितीयकः ॥१२७॥

समस्त ज्ञेय (विषय) प्रतीत होने वाला ज्ञान मन कहलाता है। ज्ञान और ज्ञेय को एक-रूप करना चाहिए, इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है ।।१२७।।

किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतैरपि ।
दुर्लभा चित्तविश्रान्तिः विना गुरुकृपां पराम् ।।१२८।।

सैकड़ों करोड़ों शास्त्रों की बहुत उक्तियों से इस विषय में क्या लाभ है ? गुरु की परम कृपा के बिना चित्त-शान्ति दुर्लभ है ।।१२८।।

करुणाखड्गपातेन छित्वा पाशाष्टकं शिशोः ।
सम्यगानन्दजनकः सद्गुरुः सोऽभिधीयते ।।१२९।।

करुणारूपी तलवार चलाकर शिष्य के आठ बन्धनों को नष्ट कर सम्यग् आनन्द को उत्पन्न करने वाले को सद्गुरु बताया जाता है ।।१२९।।

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः ।
स याति नरकान् घोरान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।१३०।।

हे महादेवि, जो ऐसा सुनकर भी गुरु की निन्दा करता है, वह सूर्य और चन्द्र की स्थितिपर्यन्त घोर नरक को प्राप्त होता है ।।१३०।।

यावन्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत् ।
गुरुलोपः न कर्त्तव्यः स्वछन्दो यदि वा भवेत् ।।१३१।।

जब तक देह है, तब तक कल्पपर्यन्त गुरु का स्मरण करना चाहिए। स्वच्छन्द होने पर भी गुरु को नहीं भुलाना चाहिए ॥१३१॥

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञशिष्यैः कदाचन।
गुरोरग्र न वक्तव्यमसत्यं तु कदाचन ॥१३२॥

गुरु के सामने बुद्धिमान शिष्य को न तो हुकार करना चाहिए और न कभी असत्य बोलना चाहिए ॥१३२॥

टिप्पणी—'हुं' घणा और अपमान को सूचित करता है, अतः गुरु के सामने यह ध्वनि नहीं करनी चाहिए।

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुसान्निध्यभाषणः।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥१३३॥

गुरु को 'तुम' अथवा 'हुं' कहकर गुरु के समीप बोलने वाला वन अथवा जलरहित देश में ब्रह्मराक्षस होता है ॥१३३॥

अद्वैतं भावयेन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा।
कदाचिदपि नो कुर्याद्द्वैतं गुरुसन्निधौ ॥१३४॥

गुरु के समीप सर्वदा समस्त अवस्थाओं में अद्वैत की भावना नित्य रखनी चाहिए और कभी द्वैत का (परायेपन) व्यवहार नहीं करना चाहिए ॥१३४॥

दृश्यविस्मृतिपर्यन्तं कुर्याद् गुरुपदार्चनम्।
तादृशस्यैव कैवल्यं न च तद्व्यतिरेकिणः ॥१३५॥

दृश्य (विषय) की विस्मृति-पर्यन्त गुरुपद की पूजा करनी चाहिए, इसी प्रकार ऐसे ही व्यक्ति का कैवल्य होता है, उससे भिन्न व्यक्ति का कैवल्य नहीं होता हैं ॥१३५॥

टिप्पणी—त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर आत्मा में स्थित होना कैवल्य है।

अपि संपूर्णतत्त्वज्ञो गुरुत्यागी भवेद्यदा ।
भवत्येव हि तस्यान्तकाले विक्षेपमुत्कटम् ॥१३६॥

जब सम्पूर्ण तत्त्वों का ज्ञाता होकर भी कोई गुरु को छोड़ देता है, मृत्यु-काल में उसका महान विक्षेप होता है ॥१३६॥

गुरुकार्यं न लंघेत् नापृष्ट्वा कार्यमाचरेत् ।
न ह्युत्तिष्ठेद्दिशेऽनत्वा गुरुसद्भावशोभितः ॥१३७॥

गुरु-कार्य का लंघन नहीं करना चाहिए और न विना पूछे हुये गुरु-कार्य करना चाहिए। गुरु के सद्भाव से शोभित शिष्य को उस (गुरु की) दिशा में नमस्कार किये विना नहीं उठना चाहिए ॥१३७॥

गुरौ सति स्वयं देवि परेषां तु कदाचन ।
उपदेशं न वै कुर्यात् तथा चेद्राक्षसो भवेत् ॥१३८॥

हे देवि, गुरु के रहते हुये स्वयं दूसरों को कभी उपदेश नहीं देना चाहिए, गुरु के रहते हुये स्वयं दूसरों को उपदेश देने वाला राक्षस होता है ॥१३८॥

न गुरोराश्रमे कुर्यात् दुष्पानं परिसर्पणम् ।
दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि गुरोराज्ञां न कारयेत् ॥१३९॥

गुरु के आश्रम में मदिरापान में तथा इधर-उधर घूमने में समय का दुरुपयोग न करना चाहिए। गुरु के समान दीक्षा, व्याख्या, प्रभुताप्रदर्शन आदि न करना चाहिए ॥१३९॥

नोपाश्रमं च पर्यंकं न च पादप्रसारणम् ।
नांगभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि ॥१४०॥

(गुरु के समक्ष) समीप बैठना, विस्तर का सेवन, पैर फैलाना, अंगों की चंचलता और अन्य विलास न करना चाहिए ॥१४०॥

गुरूणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत् ।
कुर्वन्नाज्ञां दिवा रात्रौ दासवन्निवसेद्गुरौ ॥१४१॥

गुरु की असत्, सत् वाणी का लंघन न करना चाहिए। दिन-रात गुरु की आज्ञा का पालन करते हुये दास के समान गुरु के समीप रहना चाहिए ॥१४१॥

अदत्तं न गुरोर्द्रव्यमुपभुञ्जीत कर्हिचित् ।
दत्तं च रंकवद्ग्राह्यं प्राणोऽप्येतेन लभ्यते ॥१४२॥

विना दिये हुये गुरु के द्रव्य का उपभोग कभी नहीं करना चाहिए। देने पर भी रंक के समान ग्रहण करना चाहिए। इससे आयु की प्राप्ति होती है ॥१४२॥

पादुकासनशय्यादि गुरुणा यदभीष्टितम् ।
नमस्कुर्वीत तत्सर्वं पादाभ्यां न स्पृशेत् क्वचित् ॥१४३॥

गुरु के लिए अभीष्ट पादुका, आसन, शय्या आदि सबको नमस्कार करना चाहिए, पैरों से कभी नहीं छूना चाहिए । ॥१४३॥

गच्छतः पृष्ठतो गच्छेत् गुरुच्छायां न लंघयेत् ।
नोल्बणं धारयेद्वेषं नालंकारांस्ततोल्वणान् ॥१४४॥

गुरु के पीछे चलना चाहिए; गुरु की छाया को नहीं लांघना चाहिए; भड़कीले वेष और भड़कीले आभूषणों को धारण नहीं करना चाहिए ॥१४४॥

गुरुनिन्दाकरं दृष्ट्वा धावयेदथ वासयेत् ।
स्थानं वा तत्परित्याज्यं जिह्वाछेदाक्षमो यदि ॥१४५॥

गुरु की निंन्दा करने वाले व्यक्ति को देखकर हट जाना चाहिए यदि उसकी जिह्वा न काटी जा सके ॥१४५॥

नोच्छिष्टं कस्यचिद्देयं गुरोराज्ञां न च त्यजेत् ।
कृत्स्नमुच्छिष्टमादाय हविर्वद्भक्षयेत् स्वयम् ॥१४६॥

गुरु के झूठे को किसी को नहीं देना चाहिए; गुरु की आज्ञा का अपमान नहीं करना चाहिए । सारे उच्छिष्ट को लेकर यज्ञ की पवित्र हवि के समान स्वयं खाना चाहिए ॥१४६॥

नानृतं नाप्रियं चैव न गर्वं नापि वा बहु ।
न नियोगधरं ब्रूयात् गुरोराज्ञां विभावयेत् ॥१४७॥

गुरु से झूठ, अप्रिय, गर्वयुक्त, वहुत, आदेश युक्त वचन नहीं कहना चाहिए । गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए ॥१४७॥

प्रभो देवकुलेशानां स्वामिन् राजन् कुलेश्वर ।
इति सम्बोधनैर्भीतो सच्चरेद्गुरुसन्निधौ ॥१४८॥

"प्रभो, देवकुलेश, स्वामिन्, राजन्, कुलेश्वर" इन सम्बोधनों के द्वारा गुरु के समीप भयभीत होकर विचरण करना चाहिए ॥१४८॥

मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैर्वा शापितो यदि ।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुः संत्राति पार्वति ॥१४९॥

हे पार्वती ! मुनियों, सर्पों अथवा देवताओं के द्वारा शाप दिये जाने पर अथवा कालमृत्यु के भय से गुरु रक्षा करता है ॥१४९

अशक्क्ताः हि सुराद्याश्च ह्यशक्ताः मुनयस्तथा ।
गुरुशापोपन्नस्य रक्षणाय च कुत्रचित् ॥१५०॥

गुरु के द्वारा अभिशप्त व्यक्ति की रक्षा के लिए (कहीं किसी स्थिति में) देवता आदि असमर्थ हैं, मुनि भी असमर्थ हैं ॥१५०॥

मन्त्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
स्मृतिवेदपुराणानां सारमेव न संशयः ॥१५१॥

हे देवि ! 'गु' और 'रु' ये दोनों अक्षर मन्त्रराज हैं और निस्सन्देह स्मृतियों, वेदों और पुराणों का सार हैं ॥१५१॥

सत्कारमानपूजार्थं दण्डकाषायधारण: ।
स संन्यासी न वक्तव्यः संन्यासी ज्ञानतत्पर: ॥१५२॥

सत्कार, मान और पूजा के लिए दण्ड और काषाय वस्त्र को धारण करने वाले व्यक्ति को संन्यासी नहीं कहना चाहिए, ज्ञान में तत्पर रहने वाला ही संन्यासी होता है ॥१५२॥

विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै संन्यासिन: प्रोक्ताः इतरे वेषधारिण: ॥१५३॥

गुरु की चरण-सेवा से जो (तत्त्वमसि) महावाक्य को जान लेते हैं, वे संन्यासी कहे गये हैं, दूसरे केवल वेष को ही धारण करने वाले हैं ॥१५३॥

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं सत्यचिद्घनम् ।
य: साक्षात्कुरुते लोके गुरुत्वं तस्य शोभते ॥१५४॥

जो नित्य, निराकार, निर्गुण, सत्, चित् ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है, उसी का गुरुत्व लोक में शोभित होता है ॥१५४॥

गुरुप्रसादत: स्वात्मन्यात्मारामनिरीक्षणात् ।
समता मुक्तिमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥१५५॥

गुरु की कृपा से, आत्मा में ही परमात्मा के सुख को देखते हुए, मुक्तिमार्ग में स्थिरता से आत्म ज्ञान प्रवर्तित होता है ।।१५५।।

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकम् ।
स्थावरं जंगमं चैव प्रणमामि जगन्मयम् ।।१५६।।

ब्रह्मा से स्तम्भ-पर्यन्त जड़चेतन जगन्मय परमात्मस्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं ।।१५६

वन्देहं सच्चिदानन्दं भावातीतं जगद्गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम् ।।१५७।।

सच्चिदानन्द, भावातीत, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण, अपने में प्रतिष्ठित जगद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं ।।१५७।।

परात्परतरं ध्यायेन्नित्यमानन्दकारकम् ।
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।।१५८।।

आनन्दकारक, हृदयाकाश के मध्य में स्थित, स्फटिक के समान शुद्ध, जिससे बढ़कर और सत्ता नहीं ऐसे महान् ब्रह्म का मैं ध्यान करता हूं ।।१५८।।

स्फाटिके स्फाटिकं रूपं दर्पणे दर्पणो यथा ।
तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत् ।।१५९।।

जैसे स्फटिक मणि में स्फटिक मणि और दर्पण में दर्पण प्रकाशित होता है, उसी प्रकार से आत्मा में चैतन्य और आनन्द प्रकाशित होता है ।।१५९।।

अंगुष्ठमात्रं पुरुषं ध्यायेच्च चिन्मयं हृदि ।
तत्र स्फुरति यो भावः शृणु तत्कथयामि ते ।।१६०।।

हृदय में अंगुष्ठमात्र चेतन पुरुष का ध्यान करना चाहिए, वहां जो भाव स्फुरित होता है, उसे मैं तुमसे कहता हूं ।।१६०।।

टिप्पणी—व्यापक आकाश घट की अपेक्षा से घटाकाश कहा जाता है वैसे ही अनन्त आत्मा अथवा पुरुष हृदय-स्थान की अपेक्षा से अंगुष्ठमात्र कहा जाता है ।

अजोऽहममरोऽहं च ह्यनादिनिधनो ह्यहम् ।
अविकारश्चिदानन्दो ह्यणीयान् महतो महान् ।।१६१।।

मैं अजन्मा और अमर हूं, मैं आदि अन्त से रहित, विकार-रहित, चैत्तन्य, आनन्द, परम सूक्ष्म और महान् से महान् हूं ।।१६१

अपूर्वमपरं नित्यं स्वयंज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ।।१६२।।

अपूर्व, अपर, नित्य, स्वयं-प्रकाश, निरामय, निर्दोष, परमाकाश, ध्रुव, अविनाशी (मैं) हूं ।।१६२।।

अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम् ।
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वभावाद्ब्रह्म पार्वति ।।१६३।।

हे पार्वती, मैं इन्द्रियातीत, अगम्य, नामरुपरहित, शब्द-रहित ब्रह्म स्वभाव से हूं, ऐसा समझना चाहिए ।।१६३

यथा गन्धस्वभावत्वं कर्पूरकुसुमादिषु ।
शीतोष्णत्वस्वभावत्वं तथा ब्रह्मणि शाश्वतम् ।।१६४।।

जैसे कपूर, पुष्प आदि गन्ध का स्वभाव है, जैसे (जल में) शीत और (अग्नि में) उष्णता का स्वभाव है, उसी प्रकार से ब्रह्म में नित्यता है ।।१६४।।

यथा निजस्वभावेन कुण्डलकटकादयः ।
सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ।।१६५।।

जैसे कुण्डल, कटक आदि स्वभावतः स्वर्ण ही रहते है, उसी प्रकार से मैं नित्य ब्रह्म हूं ।।१६५।।

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् ।
कीटो भृङ्ग इव ध्यानाद्यथा भवति तादृशः १६६।।

जैसे ध्यान से भृंग, कीट के समान दूसरा कीट स्वयं हो जाता है, वैसा ही स्वयं ध्यान से (ब्रह्म) हो जाना चाहिए ।।१६६।।

गुरुध्यानं तथा कृत्वा स्वयं ब्रह्ममयो भवेत् ।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तास्ते नात्र संशयः ।।१६७।।

उसी प्रकार से गुरु का ध्यान कर स्वयं ब्रह्ममय हो जाना चाहिए । वे (ऐसा करने वाले) पिण्ड, पद और रुप में निस्संदेह मुक्त हैं ।।१६७।।

॥ श्री पार्वती उवाच ॥

पिंडं किं तु महादेव पदं किं समुदाहृतम् ।
रूपातीतं च रूपं किं एतदाख्याहि शंकर ॥१६८॥

॥श्री पार्वती ने कहा॥

हे महादेव ! पिण्ड क्या है ? पद किस को क्या कहा गहा है ? रूपातीत और रुप क्या है ? हे शंकर ! यह मुझे बताओ ॥१६८॥

॥ श्री महादेव उवाच ॥

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसमुदाहृतम् ।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥१६९॥

॥श्री महादेव ने कहा॥

कुण्डलिनी शक्ति पिण्ड है, हंस को पद कहा गया है, बिन्दु को रुप कहा गया है और रुपातीत अविनाशी ब्रह्म है ॥१६९॥

पिण्डे मुक्ताः पदे मुक्ता रूपे मुक्ता वरानने ।
रूपातीते तु ये मुक्तास्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥१७०॥

हे सुमुखी, जो पिण्ड में मुक्त हैं, पद में मुक्त हैं, रुप में मुक्त हैं' रूपातीत में मुक्त हैं, वे निस्संदेह मुक्त हैं ॥१७०॥

गुरोर्ध्यानेनैव नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
स्थितश्च यत्र कुत्रापि मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥१७१॥

जीव नित्य गुरु के ध्यान से ब्रह्ममय हो जाता है, जहां कहीं भी (सर्वत्र) वह रहता हुआ निस्संदेह मुक्त है ॥१७१॥

ज्ञानं स्वानुभवः शान्तिर्वैराग्यं वक्तृता धृतिः ।
षड्गुणैश्वर्ययुक्तो हि भगवान् श्रीगुरुः प्रिये ॥१७२॥

श्री-गुरु ज्ञान, स्वानुभव, शान्ति, वैराग्य, वक्तृता, धैर्य षड्गुण (उत्पन्ति, प्रलय, प्राणियों का गमन आगमन; विद्या और अविद्या का ज्ञान), ऐश्वर्यों से युक्त भगवान हैं ॥१७२॥

गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम् ।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो गुरोरन्यन्न विद्यते ॥१७३॥

गुरु शिव, गुरु देव, गुरु प्राणियो का बन्धु, गुरु आत्मा और गुरु जीव है, गुरु के अतिरिक्त कुछ नहीं है ॥१७३॥

एकाकी निस्पृहः शान्तश्चिन्तासूयादिवर्जितः ।
बाल्यभावेन यो भाति ब्रह्मज्ञानी स उच्यते ॥१७४॥

जो एकाकी, स्पृहारित, शान्त, चिन्ता व असूया आदि से रहित होकर बाल्यभाव से प्रकाशित रहता है, वह ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है ॥१७४।

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मन्त्रयन्त्रके ।
गुरोः प्रसादादन्यत्र सुखं नास्ति महीतले ॥१७५॥

गुरु-कृपा के बिना पृथ्वी-तल पर वेद-शात्र में सुख नहीं और मन्त्र-तन्त्र में भी सुख नहीं ॥१७५॥

चार्वाकवैष्णवमते सुखं प्राभाकरे न हि ।
गुरोः पादान्तिके यद्वत्सुखं वेदान्तसम्मतम् ॥१७६॥

गुरु-चरण के समीप जो वेदान्तसम्मत सुख है, (वह सुख) चार्वाक मत, वैष्णवमत और प्रभाकर मत में नहीं है ॥१७६॥

टिप्पणी—प्रभाकर मत मीमांसा दर्शन का एक सम्प्रदाय हैं ।

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ॥१७७॥

वीतराग, एकान्तवासी मुनि को जो सुख प्राप्त होता है वह सुख इन्द्र और चक्रवर्ती राजा को भीप्राप्त नहीं हैं ॥१७७॥

नित्यं ब्रह्मरसं पीत्वा तृप्तो यः परमात्मनि ।
इन्द्रं च मन्यते तुच्छं नृपाणां तत्र का कथा ॥१७८॥

जो नित्य ब्रह्मरस (ब्रह्मानन्द) का पान करता हुआ परमात्मा में तृप्त है, (वह) इन्द्र को भी तुच्छ समझता है, राजाओं की तो बात ही क्या ? ॥१७८॥

यतः परमकैवल्यं गुरुमार्गेण वै भवेत् ।
गुरुभक्तिरतः कार्या सर्वदा मोक्षकांक्षिभिः ॥१७९॥

क्योंकि गुरुमार्ग से परम कैवल्य प्राप्त होता है, अतः मोक्ष चाहने वालों को सदैव गुरुभक्ति करनी चाहिए ॥१७९॥

एक एवाद्वितीयोऽहं गुरुवाक्येन निश्चितः ।
एवमभ्यस्यता नित्यं न सेव्यं वै वनान्तरम् ॥१८०॥

गुरुवाक्य से 'मैं ही एक, अद्वितीय ब्रह्म हूं'—इस प्रकार अभ्यास करने वाले को वन सेवन की आवश्यकता नहीं है ॥१८०॥

अभ्यासान्निमिषेणैवं समाधिमधिगच्छति ।
आजन्मजनितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१८१॥

इस प्रकार क्षणभर के से अभ्यास के द्वारा व्यक्ति समाधि को प्राप्त कर लेता है, (जिससे) जन्म से उत्पन्न पाप तुरन्त ही नष्ट हो जाता है ॥१८१॥

किमावाहनमव्यक्ते व्यापके किं विसर्जनम् ।
अमूर्ते च कथं पूजा कथं ध्यानं निरामये ॥१८२॥

हे निष्पाप पार्वती ! अव्यक्त ब्रह्म का क्या आवाहन्? सर्व-व्यापक ब्रह्म का किसी एक विशेष स्थान पर स्थापित करना क्या ? अमूर्त्त की पूजा कैसी और ध्यान कैसा? ॥१८२॥

गुरुर्विष्णुः सत्त्वमयो राजसश्चतुराननः ।
तामसो रुद्ररूपेण सृजत्यवति हन्ति च ॥१८३॥

गुरु ही सत्त्वमय विष्णु, रजोगुणमय ब्रह्मा और तमो-गुणमय शिव होकर सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। ॥१८३॥

स्वयं ब्रह्ममयो भूत्वा तत्परं नावलोकयेत् ।
परात्परतरं नान्यत् सर्वगंच निरामयम् ॥१८४॥

स्वयं परमात्मभाव से मुक्त होकर व्यक्ति सर्वातीत, सर्वव्यापी और दोषरहित परमात्मा से भिन्न कुछ भी न देखे ॥१८४॥

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः ।
एकाकी निस्पृहः शान्तः स्थातव्यं तत्प्रसादतः ॥१८५॥

उसकी (ब्रह्म की) दृष्टि (ज्ञान की झलक) प्राप्ति कर समस्त आसक्तियों से रहित होकर उसकी कृपा से एकाकी निःस्पृह और शान्त रहना चाहिए ॥१८५॥

लब्धं वाऽथ न लब्धं वा स्वल्पं वा बहुलं तथा ।
निष्कामेनैव भोक्तव्यं सदा सन्तुष्टमानसः ॥१८६॥

अल्प अथवा बहुत प्राप्ति होने पर अथवा प्राप्त न होने पर सदैव निष्काम होकर सन्तुष्ट मन से भोग करना चाहिए ॥१८६॥

सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि ।
सदाऽनन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित् ॥१८७॥

(इस प्रकार) जीव "सर्वज्ञ'! पद को प्राप्त हुआ कहा जाता है। वह पृथिवी पर सर्वमय, सदा आनन्दमय, सदा शान्त होकर जहाँ कहीं भी रमण करता है। ॥१८७॥

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः ।
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया ॥१८८॥

जहाँ वह रहता है वह देश पुण्यभागी है। देवि ! मुक्ति का लक्षण मैंने तुम्हारे सामने कहा है ॥१८८॥

उपदेशस्त्वयं देवि गुरुमार्गेण मुक्तिदः ।
गुरुभक्तिस्तथात्यन्ता कर्त्तव्या वै मनीषिभिः ॥१८९॥

हे देवि ! यह उपदेश गुरुमार्ग से मुक्ति देने वाला है। मनीषियों को गुरु के प्रति महान् भक्ति करनी चाहिए। ॥१८९॥

नित्ययुक्ताश्रयः सर्वो वेदकृत्सर्ववेदकृत् ।
स्वपरज्ञानदाता च तं वन्दे गुरुमीश्वरम् ॥१९०॥

नित्य मुक्त, आश्रय देने वाले, सम्पूर्ण, वेदों की रचना करने वाले, समस्त वेदों की रचना करने वाले, अपने और दूसरे के ज्ञान को देने वाले, ईश्वर स्वरूप गुरु को मैं नमस्कार करता हूं ॥१९०॥

यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये ।
अध्यात्मादीनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ॥१९१॥

हे प्रिये, यद्यपि छः अंगों सहित वेदों, आगमों और अध्यात्म आदि शास्त्रों का अध्ययन किया जाय, तथापि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता है ॥१९१॥

शिवपूजारतो वापि विष्णुपूजारतोऽथवा ।
गुरुतत्त्वविहीनश्चेत्तत्सर्वं व्यर्थमेव हि ॥१९२॥

यदि कोई शिव-पूजा में रत है अथवा विष्णु-पूजा में रत है, तथापि गुरु-तत्त्व से हीन है तो सब व्यर्थ हो जाता है ॥१९२॥

शिवस्वरूपमज्ञात्वा शिवपूजा कृता यदि ।
सा पूजा नाममात्रं स्याच्चित्रदीप इव प्रिये ॥१९३॥

हे प्रिये, यदि शिव के रूप को जाने बिना शिव की पूजा की जाती है, तो वह पूजा चित्रदीप के समान नाममात्र ही होती है ॥१९३ः।

सर्वं स्यात्सफलं कर्म गुरुदीक्षाप्रभावतः ।
गुरुलाभात्सर्वलाभो गुरुहीनस्तु बालिशः ॥१९४॥

गुरुदीक्षा के प्रभाव से सब कर्म सफल होते हैं, गुरु की प्राप्ति से सब मिलता हैं और गुरुरहित व्यक्ति मूर्ख है। ॥१९४॥

गुरुहीनः पशुः कीटः पतंगो वक्तुमर्हति ।
शिवरूपं स्वरूपं च न जानाति यतस्स्वयम् ॥१९५॥

गुरुविहीन व्यक्ति पशु, कीट और पतंग कहा जा सकता है, क्योंकि वह स्वयं शिव के और अपने स्वरूप को नहीं जानता है ॥१९५ः

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वसंगविवर्जितः ।
विहाय शास्त्रजालानि गुरुमेव समाश्रयेत् ॥१९६॥

अतः समस्त आसक्ति को छोड़कर, शास्त्रों के जाल को छोड़कर पूर्ण प्रयत्न से गुरु का आश्रय लेना चाहिए ॥१९६॥

निरस्तसर्वसन्देहो एकीकृत्य सुदर्शनम् ।
रहस्यं यो दर्शयते भजामि गुरुमीश्वरम् ॥१९७॥

समस्त शंकाओं से रहित, एकाग्र ब्राह्मी-दृष्टि से युक्त जा रहस्य का दूसरे को दर्शन कराता है, उस ईश्वरस्वरूप गुरु को मैं भजता हूं ॥१९७॥

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विडंबकः ।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम् ॥१९८॥

ज्ञानहीन, मिथ्या बोलने वाला और अभिमानी गुरु त्याज्य है, जो स्वयं शान्ति की प्राप्ति में असमर्थ है, वह दूसरे को शान्ति प्रदान करने में क्या समर्थ हो पायेगा ॥१९८॥

शिलायाः किं परं ज्ञानं शिलासंघप्रतारणे ।
स्वयं तर्तुं न जानाति परं निस्तारयेत्कथम् ॥१९९॥

दूसरे पत्थरों को पार उतारने में एक पत्थर में भला कैसा परम ज्ञान? जो स्वयं पार होने में समर्थ नहीं है वह दूसरे को कैसे पार करा सकता है ? ॥१९९॥

न वन्दनीयास्ते कष्टं दर्शनाद्भ्रान्तिकारकाः ।
वर्जयेत्तान् गुरून् दूरे धीरानेव समाश्रयेत् ॥२००॥

वे वन्दनीय नहीं है। दुःख की वात है कि वे दर्शन से ही भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे गुरुओं को दूर से ही छोड़ देना चाहिए और बुद्धिमान गुरु का आश्रय लेना चाहिए। ॥२००॥

पाषण्डिन : पापरताः नास्तिका भेदबुद्धयः ।
स्त्रीलम्पटा दुराचाराः कृतघ्ना बकवृत्तयः ॥२०१॥
कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टा निन्द्यतर्कैश्च वादिनः ।
कामिनः क्रोधिनश्चैव हिंस्राश्चण्डाः शठास्तथा ॥२०२॥
ज्ञानलुप्ता न कर्त्तव्या महापापास्तथा प्रिये ।
एभ्यो भिन्नो गुरुः सेव्यः एकभक्त्या विचार्य च ॥२०३॥

पाखण्डी, पाप कर्म करने वाले (पापरत), नास्तिक, भेद-बुद्धि वाले, स्त्रीलम्पट (कामी), दुराचारी, कृतघ्न, बकवृत्ति वाले ॥२०१॥

और कर्मभ्रष्ट, क्षमारहित, तर्क की निन्दा वाले, वादी, कामी, क्रोधी, हिंसक, चण्ड(उग्र) और शठ ॥२०२॥

तथा ज्ञानरहित, महापापी को गुरु न करना चाहिए। विवेकपूर्वक विचारकर एकमात्र (अनन्य) भक्ति से इनसे भिन्न (सच्चे) गुरु का सेवन करना चाहिए ॥२०३॥

टिप्पणी—श्लोक २०१, २०२ २०३ में एक ही वाक्य है ।

शिष्यादन्यत्र देवेशि न वदेद्यस्य कस्यचित् ।
नराणां च फलप्राप्तौ भक्तिरेव हि कारणम् ॥२०४॥

हे देवेशि ! शिष्य के अतिरिक्त जिस किसी को (यह) न बताना चाहिए। फल की प्राप्ति में मनुष्यों की भक्ति ही कारण है ॥२०४॥

गूढो दृढश्च प्रीतश्च मौनेन सुसमाहितः ।
सकृत्कामगतौ वापि पञ्चधा गुरुरीरितः ॥२०५॥

गूढ़, दृढ़, प्रीत, मौनी, अनायास स्वेच्छा गति से युक्त— ये पांच प्रकार के गुरु कहे गये हैं ॥२०५॥

सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं पापनाशनम् ।
यद्यदात्महितं वस्तु तत्तद्रव्यं न वञ्चयेत् ॥२०६॥

गुरुमुख से प्राप्त सब सफल और पापनाशक होता है। जो जो अपने लिए हितकारक हो, से प्राप्त उस वस्तु को प्रवञ्चित न करना चाहिए ॥२०६॥

गुरुदेवार्पणं वस्तु तेन तुष्टोऽस्मि सुव्रते ।
श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मूलमन्त्रं च गोपयेत् ॥२०७॥

हे पार्वती ! शिष्य के द्वारा जो भी वस्तु गुरुदेव को अर्पित की जाती है मैं उससे सन्तुष्ट होता हूं। श्रीगुरु की पादुका मुद्रा और मूलमन्त्र को सुरक्षित रखना चाहिए ॥२०७॥

नतास्मि ते नाथ पदारविन्दं
बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यते भवति आत्मयुक्तौ
मुमुक्षुभिः कर्ममयोपशान्तये ॥२०८॥

हे नाथ, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण सन और बाणी से मैं आप के चरण कमल को मैं नमस्कार करता हूं, मुक्षु, (मोक्ष चाहने वाले) कर्मबन्धन की शान्ति के लिए पवित्र हृदय से जिसका चिन्तन करते हैं ॥२०८॥

अनेन यद्भवेत्कार्यं तद्वदामि तव प्रिये ।
लोकोकापरकं देवि लौकिकं तु विवर्जयेत् ॥२०६॥

हे प्रिये ! इससे जो लोकोपकारक कार्य होते हैं, उसे मैं तुमसे कहता हूं। लौकिकता (लोक की आसक्ति) त्याग देना चाहिए ॥२०६॥

लौकिकाद्धर्मतो याति ज्ञानहीनो भवार्णवे ।
ज्ञानभावे च यत्सर्वं कर्म निष्कर्म शाम्यति ॥२१०॥

ज्ञानहीन व्यक्ति लौकिक धर्म के कारण भ्रमण करता रहता है। ज्ञान हो जाने पर समस्त कर्म और निष्कर्म शान्त हो जाते हैं ॥२१०॥

इमां तु भक्तिभावेन पठेद्वै श्रृणुयादपि ।
लिखित्वा यत्प्रदानेन तत्सर्वं फलमश्नुते ॥२११॥

(जो) भक्तिभाव से इसे पढ़ता अथवा सुनता है अथवा लिखकर प्रदान करने से भी वह समस्त फल को प्राप्त करता है ॥२११॥

गुरुगीतामिमां देवि हृदि नित्यं विभावय ।
महाव्याधिगतैर्दुःखैः सर्वदा प्रजपेन्मुदा ॥२१२॥

हे देवि, हृदय में इस गुरुगीता की नित्य भावना करो। महान रोग के दुःख के होते हुए भी सर्वदा प्रसन्न होकर (इसका) जप करना चाहिए ॥२१२॥

गुरुगीताक्षरैकैकं मन्त्रराजमिदं प्रिये ।
अन्ये च विविधा मन्त्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२१३॥

गुरुगीता के एक-एक ये अक्षर मन्त्रराज है, अन्य विविध मन्त्र (इसकी) सोलहवीं कला भर भी नहीं है ॥२१३॥

अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु ।
सर्वपापहरा देवि सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥२१४॥

गुरुगीता के जप से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। हे देवि, (गुरुगीता) समस्त पापों को हरने वाली और समस्त दरिद्रता को नष्ट करने वाली है ॥२१४॥

अकालमृत्युहर्त्री च सर्वसंकटनाशिनी ।
यक्षराक्षसभूतादिचोरव्याघ्रविघातिनी ॥२१५॥

(गुरुगीता) अकाल मृत्यु को हटाने वाली, समस्त कटों को नष्ट करने वाली यक्ष, राक्षस, भूतादि, चोर और व्याघ्र को नष्ट करने वाली है ॥२१५॥

सर्वोपद्रवकुष्ठादिदुष्टदोषनिवारिणी ।
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद्भवेत् ॥२१६॥

(गुरुगीता) समस्त उपद्रव, कुष्ठादि रोग और कष्टकारक दोषोंका निवारण करने वाली है। गुरु के सामीप्य से जो फल होता है, (गुरुगीता के) पढ़ने से वही फल होता है ॥२१६॥

महाव्याधिहरा सर्वविभूतेः सिद्धिदा भवेत् ।
अथवा मोहने वश्ये स्वयमेव जपेत्सदा ॥२१७॥

(गुरुगीता) समस्त रागों को दूर करने वाली सभी ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली और सिद्धि देने वाली है। सम्मोहन अथवा वशीकरण के प्रभाव को दूर करने के लिए स्वयं इसका सदैव जप करना चाहिए ॥२१७॥

कुशदूर्वासने देवि ह्यासने शुभ्रकम्वले।
उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः ॥२१८॥

हे देवि ! कुश अथवा दूर्वा ग्रास से बने अथवा शुभ्र कम्बल से युक्त आसन पर बैठकर एकाग्र मन से जप करना चाहिए ॥२१८॥

शुक्लं सर्वत्र वै प्रोक्तं वश्ये रक्तासनं प्रिये।
पद्मासने जपेन्नित्यं शान्तिवश्यकरं परम् ॥२१९॥

हे प्रिये, सर्वत्र शुक्ल आसन कहा गया है और वशीकरण में लाल आसन कहा गया है। पद्मासन में बैठकर इसका नित्य जप करना चाहिए (इस प्रकार यह) परम शान्ति देने वाली है ॥२१९॥

वस्त्रासने च दारिद्रयं पाषाणे रोगसम्भवः।
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम् ॥२२०॥

वस्त्रासन पर बैठकर जप करने से दारिद्रय तथा पत्थर के आसन पर रोग की उत्पत्ति होती है और भूमि पर दुःख की प्राप्ति होती है एवं काष्ठ पर निष्फलता प्राप्त होती है ॥२२०॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ।।२२१।।

कृष्णमृगचर्म पर ज्ञान-सिद्धि, व्याघ्रचर्म पर मोक्ष, कुशासन पर ज्ञान सिद्धि, और कम्बल पर सर्व-सिद्धि होती है ।।२२१।।

आग्नय्यां कर्षणं चैव वायव्यां शत्रुनाशनम् ।
नैर्ऋत्यां दर्शनं चैव ईशान्यां ज्ञानमेव च ।।२२२।।

दक्षिण पूर्व दिशा में जप करने से आकर्षण, उत्तर-पश्चिम दिशा में शत्रु का नाश, दक्षिण-पश्चिम दिशा में परमात्मा दर्शन और उत्तर-पूर्व दिशा में ज्ञान की प्राप्ति होती है । ।।२२२।।

उदङ्मुखः शान्तिजप्ये वश्ये पूर्वमुखस्तथा ।
याम्ये तु मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः ।।२२३।।

उत्तर दिशा की ओर मुख करके जप से शान्ति, पूर्व दिशा में मुख कर जप करने से वशीकरण, दक्षिण दिंशा मैं मारण और पश्चिम में धन की प्राप्ति होती है ।।२२३।।

मोहनं सवभूतानां बन्धमोक्षकरं परम् ।
देवराज्ञां प्रियकरं राजानं वशमानयेत् ।।२२४।।

(गुरुगीता का जप) समस्त प्राणियों को आकर्षित करने वाला बन्धन से परम मुक्ति को प्राप्त कराने वाला, इन्द्र को प्रसन्न करने वाला और राजाओं को वश में करने वाला होता है ।।२२४।।

मुखस्तम्भकरं चैव गुणानां च विवर्धनम् ।
दुष्कर्मनाशनं चैव तथा सत्कर्मसिद्धिदम् ।।२२५।।

(गुरुगीता जप) मुख का स्तम्भन करने वाला (वाणी को अवरुद्ध करने वाला), गुणों को बढ़ाने वाला, दुष्कर्मों को नष्ट करने वाला और शुभ कर्मों में सिद्धि देने वाला है । ।।२२५।।

प्रसिद्धं साधयेत्कार्यं नवग्रहभयापहम् ।
दुःस्वप्ननाशनं चैव सुस्वप्नफलदायकम् ।।२२६।।

(गुरुगीता जप) प्रसिद्ध कार्यों को सिद्ध करने वाला, नव ग्रहों के भय को दूर करने वाला और शुभ स्वप्नों के फल को देने वाला है ।।२२६।।

मोहशान्तिकरं चैव बन्धमोक्षकरं परम् ।
स्वरूपज्ञाननिलयं गीताशास्त्रमिदं शिवे ।।२२७।।

हे शिवे, यह गीता-शास्त्र मोह दूर करने वाला, वन्धन से परम मुक्ति देने वाला, और स्वरूपज्ञान का आश्रय है ।।२२७।।

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चयम् ।
नित्यं सौभाग्यदं पुण्यं तापत्रयकुलापहम् ।।२२८।।

मनुष्य जिस जिस विषय की इच्छा करता है, उस उस विषय को निश्चय (गीताशास्त्र से) प्राप्त करता है, (यह) नित्य सौभाग्य प्रद, पुण्यकारक और तीनों तापों (शारीरिक मानसिक व आत्मिक) को नष्ट करने वाला है ।।२२८।।

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वन्ध्यासुपुत्रदम् ।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यस्य विवर्धनम् ।।२२९।।

(वह) नित्य समस्त शान्ति देने वाला, वन्ध्या को सुपुत्र प्रदान करने वाला, (स्त्रियों के लिए विधवापन) को दूर रखने वाला और सौभाग्य को प्राप्त करने वाला है ।। २२९।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।
निष्कामजापी विधवा पठेन्मोक्षमवाप्नुयात् ।।२३०।।

(गीताशास्त्र) आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र और पौत्र को बढ़ाने वाला है। निष्काम भाव से जपने वाली विधवा (उसे) पढ़कर मोक्ष प्राप्त करती है ।।२३०।।

अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि ।
सर्वदु:खमयं विघ्नं नाशयेत्तापहारकम् ।।२३१।।

सकाम भाव से युक्त विधवा अन्य जन्मों में (इसके जप से) विधवा नहीं होती। यह (गीता शास्त्र) सर्वदुःखमय विघ्न को हरने वाला और तापहारक है ।।२३१।।

सर्वपापप्रशमनं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।।२३२।।

(गीताशास्त्र) समस्त पापों का शमन करने वाला धर्म अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला है। (इससे) मनुष्य जिस जिस वस्तु की इच्छा करता हे, उसे निश्चय ही प्राप्त करता है ।।२३२।।

काम्यानां कामधेनुर्वै कल्पिते कल्पपादपः ।
चिन्तामणिश्चिन्तितस्य सर्वमंगलकारकम् ।२३३।।

(गुरु गीताशास्त्र) अभीष्ट पदार्थों के लिए कामधेनु व विचारे गए विषयों के लिए कल्पवृक्ष है सोचे गए विषयों के लिए सर्वमंगलकारक चिन्तामणि है ।।२३३।।

लिखित्वा पूजयेद्यस्तु मोक्षश्रियमवाप्नुयात् ।
गुरूभक्त्तिर्विशेषेण जायते हृदि सर्वदा ।।२३४।।

जो (उसे) लिखकर पूजा करता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है और उसके हृदय में गुरुभक्ति विशेष रूप से उत्पन्न होती है ।।२३४।।

जपन्ति शाक्ताः सौराश्च गाणपत्याश्च वैष्णवाः ।
शैवाः पाशुपताः सर्वे सत्यं सत्यं न संशयः ॥२३५॥

शाक्त, सौर (सूर्य उपासक), गाणपत्य, वैष्णव, शैव और पाशुपत सभी (इसे) जपते हैं । यह निस्संदेह सत्य है ॥२३५॥

इति श्रीस्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वर—
संवादे श्रीगुरुगीतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥

इति श्रीस्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्रीगुरु गीतायां द्वितीयोऽध्यायः ।

स्कन्दपुराण के उत्तरखण्ड में उमामहेश्वर सम्वाद के अन्तर्गत श्रीगुरुगीता का द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ।

तृतीय अध्याय

अथ काम्यजपस्थानं कथयामि वरानने ।
सागरान्ते सरित्तीरे तीर्थे हरिहरालये ॥२३६॥
शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे ।
वटस्य धात्र्या मूले वा मठे वृन्दावने तथा ॥२३७॥
पवित्रे निर्मले देशे नित्यानुष्ठानतोऽपि वा ।
निर्वेदनेन मौनेन जपमेतत् समारभेत् ॥२३८॥

हे सुमुखि, अब मैं अभीष्ट जप के स्थान को कहता हूं । समुद्र तट, सरितातट, तीर्थ, विष्णु मन्दिर, शिवमन्दिर, शक्तिमन्दिर, देवमन्दिर, गोष्ठ, सर्वदेवताओं के शुभ मन्दिर, वट-वृक्ष की जड़ के समीप, आंवले के वृक्ष के जड़ के समीप, वृन्दावन इत्यादि किसी पवित्र व निर्मल स्थान में नित्य-कर्मों (सन्ध्या आदि) का अनुष्ठान करते हुये वैराग्य और मौनपूर्वक यह जप करना चाहिए ॥२३६, २३७, २३८॥

टिप्पणी—श्लोक २३६, २३७, २३८ में एक वाक्य समझना चाहिए ।

जाप्येन जयमाप्नोति जपसिद्धिं फलं तथा ।
हीनं कर्म त्यजेत्सर्वं गर्हितस्थानमेव च ।।२३९।।

जप से जय की प्राप्ति होती है, जप की सिद्धि होती है और जप का फल प्राप्त होता है । समस्त नीच कर्म और नीच (निन्दनीय) स्थान को छोड़ देना चाहिए ।।२३९।।

श्मशाने विल्वमूले वा वटमूलान्तिके तथा ।
सिद्धयन्ति कानके मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ ।।२४०।।

श्मशान, वेल वृक्ष का मूल, वट वृक्ष के मूल के समीप, कनेर के मूल के समीप और आम्र-वृक्ष के समीप में जप सफल होता है ।।२४०।।

पीतासनं मोहने तु ह्यसितं चाभिचारिके ।
ज्ञेयं शुक्लं च शान्त्यर्थं वश्ये रक्तं प्रकीर्तितम् ।।२४१।।

सम्मोहन में पीतवस्त्र, अभिचार में काला वस्त्र और शान्ति के लिए श्वेत वस्त्र समझना चाहिए तथा वशीकरण में लाल वस्त्र कहा गया है ।।२४१।।

जपं हीनासनं कुर्वत् हीनकर्मफलप्रदम् ।
गुरुगीतां प्रयाणे वा संग्रामे रिपुसंकटे ।।२४२।।
जपन् जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायिका ।
सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रे न संशयः ।।२४३।।

हीन आसन पर जप करने वाला हीन कर्मफल को प्राप्त करता है। यात्रा, युद्ध, शत्रुसंकट में गुरुगीता का जप करने वाला जय को प्राप्त करना है। (गुरुगीता) मरण होने पर मुक्तिदायिका है। जप करने वाले के सारे कार्य सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार गुरुपुत्र के सम्वन्ध में निस्सन्देह समझना चाहिए ॥२४२, २४३॥

गुरुमन्त्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा ।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रके ॥२४४॥

जिसके मुख में गुरुमन्त्र रहता है अर्थात् जो गुरुमन्त्र का जप करता है, उसके सारे कार्य सिद्ध होते है, अन्य किसी उपाय से नहीं। गुरुपुत्र में दीक्षा से सारे कार्य सिद्ध होते हैं ॥२४४॥

टिप्पणी—गुरु और शिष्य में पिता पुत्र सम्वन्ध माना जाता है, अतः शिष्य को गुरुपुत्र भी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त गुरु के पुत्र को गुरुपुत्र कहा जाता है।

भवमूलविनाशाय चाष्टपाशनिवृत्तये ।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा ॥२४५॥

संसार-मूल के विनाश के लिए, आठ पाशों (बन्धनों) की निवृत्ति के लिए ज्ञानवान् व्यक्ति सदैव गुरुगीता रूपी जल में स्नान करते हैं ॥२४५॥

स एवं सद्गुरुः साक्षात् सदसत्ब्रह्मवित्तमः ।
तस्य स्थानानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः ॥२४६॥

इस प्रकार वह सदसद्रूप ब्रह्मज्ञानी साक्षात् सद्गुरु है। निस्सन्देह उसके समस्त स्थान पवित्र है ॥२४६॥

सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति ।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रपीठे चरन्ति च ॥२४७॥

पूर्णतः शुद्ध व पवित्र वह जहां ठहरता है, वहां उस क्षेत्र में समस्त देवतागण विचरण करते रहते है ॥२४७॥

आसनस्थाः शयाना वा गच्छन्तस्तिष्ठन्तोऽपि वा ।
अश्वारूढा गजारूढाः सुषुप्ताः जाग्रतोऽपि वा ॥२४८॥
शुचिभूता ज्ञानवन्तो गुरुगीतां जपन्ति ये ।
तेषां दर्शनसंस्पर्शात् दिव्यज्ञानं प्रजायते ॥२४९॥

आसन पर स्थित, लेटे हुये, चलते हुये, ठहरे हुए घोड़े पर आरूढ़, हाथी पर आरूढ़, सोते हुये, जगते हुये, पवित्र होकर, ज्ञान-युक्त होकर, जो गुरुगीता का जप करते हैं, उनके दर्शन अथवा स्पर्श से दिव्य ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥२४८, २४९॥

टिप्पणी—श्लोक २४८, २४९ में एक वाक्य है ।

समुद्रे वै यथा तोयं क्षीरे क्षीरं जले जलम् ।
भिन्ने कुम्भे यथाकाशं तथाऽऽत्मा परमात्मनि ।।२५०।।

जैसे समुद्र का जल दूध में दूध, जल में जल है और जैसे घट नष्ट हो जाने पर घट का आकाश विशाल आकाश में है, उसी प्रकार से परमात्मा में आत्मा (जीवात्मा) स्थित होता है ।।२५०।।

तथैव ज्ञानवान् जीवः,
परमात्मनि सर्वदा ।
ऐक्येन रमते ज्ञानी,यत्र कुत्र दिवानिशम्।। ।।२५१

उसी प्रकार से ज्ञानी जीव सर्वदा परमात्मा में स्थित है, ज्ञानी (जीव और ब्रह्म की) एकता के कारण जहाँ कहीं भी रहता है दिन रात (परमात्मा में) रमण करता है। ।।२५१।।

एवंविधो महायुक्तः सर्वत्र वर्तते सदा ।
तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुभक्तिं समाचरेत् ।।२५२।।

इस प्रकार ज्ञानी महायोग से युक्त होकर सदा सर्वत्र उपस्थित रहता है। यह सब गुरु की कृपा से सम्भव होने के कारण सब प्रकार से गुरु को भजना चाहिए। ।।२५२।।

गुरुसन्तोषणादेव मुक्तो भवति पार्वति ।
अणिमादिषु भोक्तृत्वं कृपया देवि जायते ।।२५३।।

हे पार्वती ! गुरु के प्रसन्न हो जाने से जीव मुक्त हो जाता है एवं, हे देवि ! गुरुकृपा से वह अणिमा आदि अनेकों सिद्धियों का भोक्ता बन जाता है ।।२५३।।

साम्येन रमते ज्ञानी दिवा वा यदि वा निशि ।
एवंविधो महामौनी त्रैलोक्यसमतां व्रजेत् ।।२५४।।

साम्य के द्वारा ज्ञानी दिन हो अथवा रात्रि हो परब्रह्म में ही रमण करता है । इस प्रकार महामुनि त्रिलोक में समता भाव को प्राप्त कर लेता है ।।२५४।।

अथ संसारिणः सर्वे गुरुगीताजपेन तु ।
सर्वान् कामांस्तु भुञ्जन्ति त्रिसत्यं मम भाषितम् ।।२५५।।

समस्त संसारी पुरुष गुरुगीता के जप से समस्त अभीष्ट विषयों का भोग करते हैं; मेरा कथन सत्य है, सत्य है, सत्य है ।।२५५।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्मसारं मयोदितम् ।
गुरुगीतासमं स्तोत्रं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।।२५६।।

मेरे द्वारा कहा गया धर्म का सार सत्य है, सत्य है, पुनः सत्य है। गुरुगीता के समान स्रोत नहीं है और गुरु से बढ़ कर तत्त्व नहीं है ।।२५६।।

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरौ निष्ठा परं तपः ।
गुरोः परतरं नास्ति त्रिवारं कथयामिते ।।२५७।।

गुरु देव हैं, गुरु धर्म है, गुरु में निष्ठा परम तप है, गुरु से बढ़कर कुछ नहीं है, (यह) मैं तुमसे तीन बार कहता हूं। ।।२५७।।

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्‌भवः ।
धन्या वसुधा देवि यत्र स्याद्‌गुरुभक्तिता ।।२५८।।

(वह) माता धन्य है, (वह) पिता धन्य है, (वह) गोत्र धन्य है, (वह) कुल धन्य है, पृथिवी धन्य है जहां हे देवि, गुरुभक्त होते हैं।।२५८।।

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपःक्रिया ।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरूसन्तोषमात्रतः ।।२५९।।

हे देवि, करोड़ों जन्मों और कल्पों के सभी यज्ञ व व्रत तथा सभी प्रकार की तपस्या गुरु के संतोष-मात्र से सफल हो जाती है ।।२५९।।

शरीरमिन्द्रियं प्राणश्चार्थः स्वजनबन्धुता ।
मातृकुलं पितृकुलं गुरुरेव न संशयः ॥२६०॥

निस्सन्देह शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अर्थ, स्वजन, स्वबन्धु, मातृकुल, पितृकुल गुरु ही हैं ॥२६०॥

मन्दभाग्या ह्यशक्ताश्च ये जना नानुमन्वते ।
गुरूसेवासु विमुखाः पच्यन्ते नरकेऽशुचौ ॥२६१॥

गुरु-सेवा से विमुख होकर गुरु का अनुसरण न करने वाले अभागे और शक्तिहीन हैं, वे अपवित्र नरक में दुःख पाते हैं ॥२६१॥

विद्या धनं बलं चैव तेषां भाग्यं निरर्थकम् ।
येषां गुरूकृपा नास्ति अधो गच्छन्ति पार्वती ॥२६२
ब्रह्मा विष्णुश्च रूद्रश्च देवताः पितृकिन्नराः ।
सिद्धचारणयक्षाश्च अन्ये च मुनयो जनाः ॥२६३॥

हे पार्वती, जिन पर गुरु कृपा नहीं है, उनकी विद्या, धन, बल, और भाग्य सब निरर्थक है, वे अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥२६२॥

(चाहे वे) ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवता, किन्नर, पितर, सिद्ध, चरण, यक्ष और अन्य मुनि के पद की प्राप्ति कर चुके हों ॥२६३॥

टिप्पणी—इस तथ्य के प्रतिपादन में पौराणिक शैली का प्रयोग है। पुराण प्रस्तुत विषय की प्रशंसा में समस्त अप्रस्तुत विषयों को कभी-कभी हीन रूप में प्रस्तुत करते थे। भावावेश के कारण यह शैली प्रचलित हो गयी। विष्णु आदि नित्य पद में प्रतिष्ठित है, अतः उसका अधोगमन सम्भव नहीं है। इसे अर्थवाद कहा जाता है। इसके अतिरिक्त गुरुतत्त्व इनसे अभिन्न है। अन्य स्थलों पर ऐसा ही समझना चाहिए।

गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।
सर्वतीर्थमयं देवि श्रीगुरोश्चरणाम्बुजम् ॥२६४॥

गुरु-भाव परम तीर्थ हैं, अन्य तीर्थ निरर्थक है, हे देवी, श्रीगुरु के चरणकमल सर्वतीर्थमय हैं ॥२६४॥

कन्याभोगरता मन्दाः स्वकान्तायाः पराङ्मुखाः।
अतः परं मया देवि कथितन्न मम प्रिये ॥२६५॥

अन्य स्त्रियों व कन्या के भोग में निरत, अपने स्त्री से विमुख लोग तुच्छ होते है, अतः हे मेरी प्रिये, मैंने और नहीं कहा ॥२६५॥

[गुरु के चरणों को छोड़कर अन्य तीर्थों इत्यादि पर जाना भी ऐसी ही तुच्छता है]

इदं रहस्यमस्पष्टं वक्तव्यं न वरानने।
सुगोप्यं च तवाग्रे तु ममात्मप्रीतये सति ॥२६६॥

हे सुमुखि यह रहस्य अस्पष्ट (समझने में कठिन) है, जिस किसी के समक्ष यह प्रकट नहीं करना चाहिए। इसको भली भांति सुरक्षित रखना चाहिए। तुम्हारे समक्ष प्रेम के कारण कहता हूं ॥२६६॥

स्वामिमुख्यगणेशाद्यान् वैष्णवादींश्च पार्वति ।
न वक्तव्यं महामाये पादस्पर्शं कुरुष्व मे ॥२६७॥

हे पार्वती ! गणेश आदि प्रमुख देवताओं से और वैष्णव आदि से इसे मत कहना। हे महामाये, मेरे चरण का स्पर्श (करके प्रतिज्ञा) करो ॥२६७॥

अभक्ते वञ्चके धूर्ते पाषण्डे नास्तिकादिषु ।
मनसाऽपि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन ॥२६८॥

भक्तिहीन, वञ्चक, धूर्त दम्भी व नास्तिक आदि से गुरु-गीता कभी मन से भी न कहना चाहिए ॥२६८॥

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम् ॥२६९॥

शिष्य के धन को हरने वाले बहुत से गुरु होते है, परन्तु शिष्य के हृदय के ताप को हरने वाला एक गुरु दुर्लभ है ॥२६९॥

तत्त्वमस्यादिवाक्यानामुपदेष्टा तु पार्वति ।
कारणाख्यो गुरुः प्रोक्तो भवरोगनिवारकः ॥२७८॥

हे पार्वती ! 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों का उपदेश देने वाला, संसार रोग को दूर करने वाला 'कारण' नामक गुरु कहा गया है ॥२७८॥

सर्वसन्देहसन्दोहनिर्मूलनविचक्षणः ।
जन्ममृत्युभयघ्नो यः स गुरूः परमो मतः ॥२७९॥

समस्त संदेहों की राशि को नष्ट करने में कुशल, जन्म और मृत्यु के भय को दूर करने वाला जो गुरु है, वह परम-गुरु माना जाता है ॥२७९॥

बहुजन्मकृतात् पुण्याल्लभ्यतेऽसौ महागुरुः ।
लब्ध्वाऽमुं न पुनर्याति शिष्यः संसारबन्धनम् ॥२८०॥

बहुत जन्मों में किये गये पुण्यों से उस महागुरु की प्राप्ति होती है, शिष्य उसे प्राप्त करके फिर से संसार के बन्धन में नहीं पड़ता है ॥२८०॥

एवं बहुविधा लोके गुरवः सन्ति पार्वति ।
तेषु सर्वप्रयत्नेन सेव्यो हि परमो गुरुः ॥२८१॥

हे पार्वती ! इस प्रकार लोक में बहुत प्रकार के गुरु हैं, उनमें पूर्ण प्रयत्न से परम गुरु का सेवन करना चाहिए ॥२८१॥

निषिद्धगुरुशिष्यस्तु दुष्टसंकल्पदूषितः ।
ब्रह्मप्रलयपर्यन्तं न पुनर्याति मर्त्यताम् ॥२८२॥

निषिद्ध गुरु का शिष्य दुष्ट संकल्प से दूषित होकर ब्रह्म-प्रलय पर्यन्त मानवयोनि को नहीं प्राप्त होता है ॥२८२॥

टिप्पणी—ब्रह्मा की आयु पूरी होने पर होने वाला प्रलय ब्रह्म प्रलय कहलाता है ।

एवं श्रुत्वा महादेवी महादेववचस्तथा ।
अत्यन्तविह्वलमना शंकरं परिपृच्छति ॥२८३॥

इस प्रकार महादेव की वाणी को सुनकर पार्वती ने अत्यन्त व्याकुल मन से शंकर से पूछा ॥२८३॥

॥ पार्वत्युवाच ॥

नमस्ते देवदेवात्र श्रोतव्यं किंचिदस्ति मे ।
श्रुत्वा त्वद्वाक्यमधुना भृशं स्याद्विह्वलं मनः ॥२८४॥

पार्वती ने कहा

हे देवदेव ! तुम्हें नमस्कार है । इस विषय में मुझे कुछ श्रवण करना है, इस समय आपके वाक्य को सुनकर मेरा मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ॥२८४॥

चातुर्यवान् विवेकी च अध्यात्मज्ञानवान् शुचिः ।
मानसं निर्मलं यस्य गुरुत्वं तस्य शोभते ॥२७०॥

(चतुर, विवेकी, अध्यात्मज्ञान से युक्त, पवित्र, और निर्मल मन वाले का ही गुरुत्व शोभा देता है ॥२७०॥

गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचाराः जितेन्द्रियाः ॥२७१॥

गुरु निर्मल, शान्त, साधु, मितभाषी, काम और क्रोध से रहित, सदाचारी एवं जितेन्द्रिय होते हैं ॥२७१॥

सूचकादिप्रभेदेन गुरवो बहुधा स्मृताः ।
स्वयं सम्यक् परीक्ष्याथ तत्त्वनिष्ठं भजेत्सुधीः ॥२७२॥

गुरु सूचक आदि भेद से अनेक प्रकार के होते है, अतः बुद्धिमान व्यक्ति को सम्यक् परीक्षा करके तत्त्वनिष्ठ गुरु को भजना चाहिए ॥२७२॥

वर्णजालमिदं तद्वद्बाह्यशास्त्रं तु लौकिकम् ।
यस्मिन् देवि समभ्यस्तं स गुरुःसूचकः स्मृतः ॥२७३॥

हे देवि, वर्णों के जाल से युक्त लौकिक बाह्य शास्त्र में जो अभ्यस्त हे, वह गुरु 'सूचक' माना जाता है ॥२७३॥

वर्णाश्रमोचितां विद्यां धर्माधर्मविधायिनीम् ।
प्रवक्तारं गुरुं विद्धि वाचकं त्विति पार्वति ॥२७४॥

हे पार्वती ! वर्णाश्रमोचित, धर्माधर्म का विधान करने वाली विद्या के प्रवक्ता गुरु को 'वाचक' गुरु समझो ॥२७४॥

पञ्चाक्षर्यादिमन्त्राणामुपदेष्टा तु पार्वति ।
स गुरुर्बोधको भूयादुभयोरयमुत्तमः ॥२७५॥

हे पार्वती ! पञ्चाक्षरी आदि मन्त्रों का उपदेष्टा गुरु 'वोधक' गुरु होता है। यह (बोधक गुरु) अन्य दोनों (सूचक और वाचक गुरु) से उत्तम है ॥२७५॥

मोहमारणवश्यादितुच्छमन्त्रोपदर्शिनम् ।
निषिद्धगुरुरित्याहुः पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ॥२७६॥

तत्त्वदर्शी पण्डितों ने मोहन, मारण, वशीकरण आदि तुच्छ मन्त्रों को बताने वाले गुरु को 'निषिद्ध' गुरु वताया है ॥२७६॥

अनित्यमिति निर्दिश्य संसारं संकटालयम् ।
वैराग्यपथदर्शी यः स गुरुर्विहितः प्रिये ॥२७७॥

हे प्रिये ! संसार को अनित्य और संकट का गृह बताकर वैराग्य के मार्ग को प्रदर्शित करने वाला जो गुरु है, वह 'विहित' गुरु (कहलाता) है ॥२७७॥

सिद्धिजालं समालोक्य योगिनां मन्त्रवादिनाम् ।
तुच्छाकारमनोवृत्तिर्यस्यासौ परमो गुरुः ॥२९३॥

मन्त्रवेत्ताओं और योगियों के सिद्धिजाल को देखकर इनको जो तुच्छ समझता है वह 'परम-गुरु' है ॥२९३॥

स्वशरीरं शवं पश्यन् तथा स्वात्मानमद्वयम् ।
यः स्त्रीकनकमोहघ्नः स भवेत् परमो गुरुः ॥२९४॥

अपने शरीर को शव और अपनी आत्मा को अद्वितीय समझते हुए जो स्त्री और स्वर्ण (वैभव) के मोह को समाप्त करने वाला है वह 'परम-गुरु' है ॥२९४॥

मौनी वाग्मीति तत्त्वज्ञो द्विधाभूच्छृणु पार्वति ।
न कश्चिन्मौनिना लाभो लोकेऽस्मिन्भवति प्रिये ॥२९५॥

हे पार्वती ! सुनो मौनी (चुप रहने वाले) और वाग्मी (बोलने वाले) दो प्रकार के तत्त्वज्ञानी होते हैं। हे प्रिये ! इस लोक में मौनी (तत्त्वज्ञ) से कोई लाभ नहीं होता है। ॥२९५॥

वाग्मी तूत्कटसंसारसागरोत्तारणक्षमः ।
यतोसौ संशयच्छेत्ता शास्त्रयुक्त्यनुभूतिभिः ॥२९६॥

वाग्मी महान संसार सागर से पार कराने में समर्थ होता है; क्योंकि वह शास्त्रों, युक्तियों और अनुभूतियों के द्वारा संशय को नष्ट कर देता है ॥२९६॥

गुरुनामजपाद्देवि बहुजन्मार्जितान्यपि ।
पापानि विलयं यान्ति नास्ति सन्देहमण्वपि ॥२९७॥

हे देवि ! गुरुनाम के जप से बहुत जन्मों से अर्जित पाप भी नष्ट हो जाते हैं,(इसमें) कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२९७॥

श्रीगुरोस्सदृशं दैवं श्रीगुरोस्सदृशः पिता ।
गुरुध्यानसमं कर्म नास्ति नास्ति महीतले ॥२९८॥

पृथिवीतल पर श्रीगुरु के समान देवता, श्रीगुरु के समान पिता और गुरुध्यान के समान कर्म नहीं है, नहीं है। ॥२९८॥

कुलं धनं बलं शास्त्रं बान्धवास्सोदरा इमे ।
मरणे नोपयुज्यन्ते गुरुरेको हि तारकः ॥२९९॥

कुल, धन, बल, शास्त्र, बान्धव, भ्राता इन सबका मरण में उपयोग नहीं है। केवल एक गुरु ही तारने वाला है। ॥२९९॥

कुलमेव पवित्रं स्यात् सत्यं स्वगुरुसेवया ।
तृप्ता स्युस्सकला देवा ब्रह्माद्या गुरुतर्पणात् ॥३००॥

अपने गुरु की सच्ची सेवा से कुल पवित्र हो जाता है। गुरु की तृप्ति से ब्रह्मा आदि समस्त देवता तृप्त हो जाते है। ॥३००॥

स्वयं मूढा मृत्युभीताः सुकृताद्विरतिं गताः ।
दैवान्निषिद्धगुरुगा यदि तेषां तु का गतिः ॥२८५॥

यदि स्वयं मूढ़, मृत्यु से भयभीत, पुण्य के कारण विरक्त व्यक्ति को दुर्भाग्य से निषिद्ध गुरु की प्राप्ति होती है, तो उनकी क्या गति होगी ॥२८५॥

॥ श्री महादेव उवाच ॥
श्रुणु तत्त्वमिदं देवि यदा स्याद्विरतो नरः ।
तदाऽसावधिकारीति प्रोच्यते श्रुतिमस्तकैः ॥२८६॥

श्री महादेव ने कहा

हे देवि, इस तत्त्व को सुनो; जब व्यक्ति वैराग्यभाव से युक्त होता है, उस समय वेदज्ञ उसे 'अधिकारी' कहते हैं ॥२८६॥

अखण्डैकरसं ब्रह्म नित्यमुक्तं निरामयम् ।
स्वस्मिन् सन्दर्शितं येन स भवेदस्य देशिकः ॥२८७॥
जलानां सागरो राजा यथा भवति पार्वति ।
गुरूणां तत्र सर्वेषां राजायं परमो गुरुः ॥२८८

जिसने अखण्डकरस, नित्यमुक्त, अविनाशी ब्रह्म को अपने में देखा, वही इसका (अधिकारी का) गुरु होता है ॥२८७॥

हे पार्वती, जैसे जल का राजा सागर होता है, उसी प्रकार से समस्त गुरुओं का राजा यह 'परम-गुरु' है। ॥२८८॥

मोहादिरहितः शान्तो नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
तृणीकृतब्रह्मविष्णुवैभवः परमो गुरुः ॥२८६॥

'परम-गुरु' मोह आदि से रहित, शान्त, नित्यतृप्त, आश्रय-रहित, ब्रह्मा और विष्णु के वैभव को भी तृण के समान समझने वाला होता है ॥२८६॥

सर्वकालविदेशेषु स्वतन्त्रो निश्चलस्सुखी ।
अखण्डैकरसास्वादतृप्तो हि परमो गुरुः ॥२६०॥

'परम-गुरु' समस्त कालों और देशों में स्वतन्त्र, निश्चल, सुखी, एकमात्र अखण्ड के आनन्द से तृप्त होता है ॥२६०॥

द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तः स्वानुभूतिप्रकाशवान् ।
अज्ञानान्धतमश्छेत्ता सर्वज्ञः परमो गुरुः ॥२६१॥

द्वैत और अद्वैत से मुक्त, आत्मानुभूति के प्रकाश से युक्त और सर्वज्ञ परम-गुरु अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है ॥२६१॥

यस्य दर्शनमात्रेण मनसः स्यात् प्रसन्नता ।
स्वयं भूयात् धृतिश्शान्तिः स भवेत् परमो गुरुः ॥२६२॥

जिसके दर्शनमात्र से मन को प्रसन्नता हो, धैर्य और शान्ति स्वयं उत्पन्न हों, वह 'परम-गुरु' होता है ॥२६२॥

दुष्टों के संग को छोड़कर पाप कर्म का परित्याग कर देना चाहिए । जिसके चित्त में यह लक्षण हो अर्थात् जिसका चित्त पाप का परित्याग कर रहा हो, उसको दीक्षा प्राप्त होती है ।।३०८।।

चित्तत्यागनियुक्तश्च क्रोधगर्वविवर्जितः ।
द्वैतभावपरित्यागी तस्य दीक्षा विधीयते ।।३०९।।

जो त्याग में लगे हुए चित्त वाला, क्रोध और गर्व से रहित एवं द्वैत भाव परित्याग करने वाला है, उसकी दीक्षा का विधान होता है ।।३०९।।

एतल्लक्षणसंयुक्तं सर्वभूतहिते रतम् ।
निर्मलं जीवितं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ।।३१०।।

(जो) इन लक्षणों से युक्त, समस्त प्राणियों के हित में लगा हुआ है, जिसका जीवन निर्मल है, उसको दीक्षा दी जाती है ।।३१०।।

क्रियया चान्वितं पूर्णं दीक्षाजालं निरूपितम् ।
मन्त्रदीक्षाभिधं सांगोपांगं सर्वं शिवोदितम् ।।३११।।

कर्म से युक्त दीक्षा के पूर्ण व्यापार का निरूपण किया गया, कल्याण के लिए सांगोपांग मन्त्रदीक्षा बतायी गयी । ।।३११।।

क्रियया स्याद्विरहितां गुरुसायुज्यदायिनीम् ।
गुरुदोक्षां विना को वा गुरुत्वाचारपालकः ॥३१२॥

गुरु क सायुज्य (भक्ति की एक अवस्था) को प्रदान करन वाली दीक्षा के विना तथा तदनुसार कर्म बिना भला कौन गुरुतत्त्व के आचार-व्यवहार का पालन करने वाला कहा जा सकता है ॥३१२॥

शक्तो न चापि शक्तो वा दैशिकांघ्रिसमाश्रयात् ।
तस्य जन्मास्ति सफलं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥३१३॥

व्यक्ति समर्थ हो अथवा असमर्थ हो, गुरु के चरणों के आश्रय से सांसारिक भोगों को प्राप्त करके तथा जन्मवन्धन से मुक्ति को पाकर उसका जन्म सफल हो जाता है ॥३१३॥

अत्यंतचित्तपक्वस्य श्रद्धाभक्तियुतस्य च ।
प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्मप्रीतये सदा ॥३१४॥

हे देवि ! मेरी हार्दिक प्रसन्नता के लिए इसे सदैव अत्यन्त परिपक्व चित्त वाले तथा श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त व्यक्ति से कहना चाहिए ॥३१४॥

रहस्यं सर्वशास्त्रेषु गीताशास्त्रमिदं शिवे ।
सम्यक्परीक्ष्य वक्तव्यं साधकस्य महात्मनः ॥३१५॥

गुरुरेको हि जानाति स्वरूपं देवमव्ययम् ।
तज्ज्ञानं यत्प्रसादेन नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥३०१॥

केवल गुरु ही अविनाशी परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का जानता है, और केवल गुरु की कृपा से परमात्मा का ज्ञान होता है, अन्यथा करोड़ों शास्त्रों से भी (आत्मज्ञान) नहीं होता है ॥३०१॥

स्वरूपज्ञानशून्येन कृतमप्यकृतं भवेत् ।
तपोजपादिकं देवि सकलं बालजल्पवत् ॥३०२॥

स्वरूप ज्ञान के बिना किया हुआ (जप, तप इत्यादि कर्म) भी असफल हो जाता है, तप, जप इत्यादि सब बालक के प्रलाप के समान हो जाता है ॥३०२॥

शिवं केचिद्धरिं केचिद्विधिं केचित्तु केचन ।
शक्तिं देवमिति ज्ञात्वा विवदन्ति वृथा नराः ॥३०३॥

कुछ लोग शिव को, कुछ विष्णु को, कुछ ब्रह्मा को और कुछ लोग शक्ति को देवता (परम तत्त्व) मानकर निरर्थक विवाद करते हैं ॥३०३॥

न जानन्ति परं तत्त्वं गुरुदीक्षापराङ्मुखाः ।
भ्रान्ताः पशुसमा ह्येते स्वपरिज्ञानवर्जिताः ॥३०४॥

गुरुदीक्षा से विमुखमनुष्य परम तत्त्व को नहीं जानते। हैं ये आत्मा के ज्ञान से रहित पशु के समान है और भटके हुए हैं ॥३०४॥

तस्मात्कैवल्यसिद्ध्यर्थं गुरूमेव भजेत्प्रिये ।
गुरूं विना न जानन्ति मूढास्तत्परमं पदम् ॥३०५॥

हे प्रिये ! आत्मा के कैवल्य की प्राप्ति के लिए गुरु को भजना चाहिए। गुरु के बिना अज्ञानी उस परम पद को नहीं जान पाते हैं ॥३०५॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि गुरोः करुणया शिवे ॥३०६॥

हे पार्वती ! गुरु की करुणा से मन की गांठें खुल जाती हैं, सभी संशय नष्ट हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥३०६॥

कृताया गुरुभक्तेस्तु वेदशास्त्रानुसारतः ।
मुच्यते पातकाद्घोराद्गुरुभक्तो विशेषतः ॥३०७॥

वेदों और शास्त्रों के अनुसार की गयी गुरुभक्ति से, विशेष रूप से गुरु-भक्त घोर पाप से मुक्त हो जाता है ॥३०७॥

दुःसंगं च परित्यज्य पापकर्म परित्यजेत् ।
चित्तचिह्नमिदं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ॥३०८॥

विकल्प (अन्य प्रकार से विचारना) व्यर्थ है, मैं ही केवल हूं, चराचर यह जगत् मुझमें स्थित है, इस रहस्य को जिसने मुझे दिखाया, केवल वह गुरु वन्दनीय है ॥३२३॥

यस्यान्तं नादिमध्यं न हि
करचरणं नामगोत्रं न सूत्रम् ।
नो जातिर्नैव वर्णो न भवति
पुरुषो नो नपुंसं न च स्त्री ॥३२४॥

नाकारं नो विकारं न हि जनिमरणं नास्ति पुण्यं न पापम् ।
नोऽतत्वं तत्वमेकं सहजसमरसं सद्गुरुं तं नमामि ॥३२५॥

जिसका अन्त, आदि और मध्य नहीं है, जिसके हाथ, पैर नहीं है, नाम, गोत्र और सूत्र नहीं हैं, जिसके जाति और वर्ण नहीं हैं, जो स्त्री, पुरुष और नपुंसक नहीं तथा जिसके आकार नहीं है, विकार नहीं है, जन्म-मरण नहीं है, पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, जो अतत्त्व नहीं है, उस सहज, समरस, एकतत्त्वमय सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं। ॥३२४, ३२५॥

टिप्पणी—श्लोक ३२४, ३२५ में एक वाक्य है।

नित्याय सत्याय चिदात्मकाय नव्याय भव्याय परात्पराय ।
शुद्धाय बुद्धाय निरञ्जनाय नमोऽस्तु नित्यं गुरुशेखराय ॥३२६॥

नित्य, सत्य, चेतन, नवीन, भव्य, परात्पर (पाप श्रेष्ठ) शुद्ध, बुद्ध, निर्लिप्त, महान गुरु को नमस्कार है ॥३२६॥

सच्चिदानन्दरूपाय व्यापिने परमात्मने ।
नमः श्रीगुरुनाथाय प्रकाशानन्दमूर्तये ॥३२७॥

सच्चिदानन्दरूप, व्यापक, परमात्मा, प्रकाश (चैतन्य) और आनन्द की मूर्ति, परमात्मा श्री गुरुनाथ को नमस्कार है ॥३२७॥

सत्यानन्दस्वरूपाय बोधैकसुखकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥३२८॥

सदानन्दस्वरूप, बोध के एकमात्र सुख को उत्पन्न करने वाले, वेदान्त के विषयस्वरूप बुद्धि के साक्षी गुरु को नमस्कार है ॥३२८॥

नमस्ते नाथ भगवान् शिवाय गुरुरूपिणे ।
विद्यावतारसंसिद्धयै स्वीकृतानेकविग्रह ॥३२९॥

विद्या के अवतरण (प्रदान) की सिद्धि के लिए अनेक शरीरों को स्वीकार (धारण) करने वाले हे नाथ, हे भगवान्, गुरु रूप में शिव (आप) को नमस्कार है ॥३२९॥

नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे ।
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ॥३३०॥

हे पार्वती ! यह गीता शास्त्र समस्त शास्त्रों का रहस्य है ठीक से परीक्षा कर मुझमें (ब्रह्म में) लगे हुए साधक को इसका ज्ञान प्रदान करना चाहिए ।।३१५।।

सत्कर्मपरिपाकाच्च चित्तशुद्धस्य धीमतः ।
साधकस्यैव वक्तव्या गुरुगीता प्रयत्नतः ।।३१६।।

शुभ कर्मों के फल देने के लिए, शुद्धचित्त वाले बुद्धिमान साधक से गुरुगीता प्रयत्नपूर्वक बतानी चाहिए ।।३१६।।

नास्तिकाय कृतघ्नाय दांभिकाय शठाय च ।
अभक्ताय विभक्ताय न वाच्येयं कदाचन ।।३१७।।

नास्तिक, कृतघ्न, दम्भी, शठ, अभक्त और गुरु-विरोधी व्यक्ति को यह (गुरुगीता) कभी न बतानी चाहिए ।।३१७।।

स्त्रीलोलुपाय मूर्खाय कामोपहतचेतसे ।
निन्दकाय न वक्तव्या गुरुगीता स्वभावतः ।।३१८।।

स्त्रीलोलुप, मूर्ख, काम से व्याकुल चित्त वाले, निन्दक व्यक्ति को गुरुगीता स्वभावतः न बतानी चाहिए ।।३१८।।

सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रववारकम् ।
जन्ममृत्युहरं देवि गीताशास्त्रमिदं शिवे ।।३१९।।

हे देवि ! यह गीता शास्त्र समस्त पापों को दूर करने वाला, समस्त उपद्रवों को शान्त करने वाला और जन्म एवं मृत्यु को हरने वाला है ॥२१६॥

श्रुतिसारमिदं देवि सर्वमुक्तं समासतः ।
नान्यथा सद्गतिः पुंसां विना गुरुपदं शिवे ॥३२०॥

संक्षेप में कहा गया यह यह सव वेदों का सार है, अन्यथा हे पार्वती ! गुरुपद के विना मनुष्यों को सद्गति प्राप्ति नहीं हो सकती ॥३२०॥

बहुजन्मकृतात्पापादयमर्थो न रोचते ।
जन्मबन्धनिवृत्यर्थं गुरुमेव भजेत्सदा ॥३२१॥

बहुत जन्मों के किये गये पाप के कारण यह अर्थ (गुरु-गीता का विषय) अच्छा नहीं लगता है, जन्म के वन्धन को नष्ट करने के लिए सदा गुरु को भजना चाहिए ॥३२१॥

अहमेव जगत्सर्वं अहमेव परं पदम् ।
एतज्ज्ञानं यतो भूयात्तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥३२२॥

मैं ही समस्त जगत् हूं, में ही परम- पद हूं, यह ज्ञान जिससे होता है, उस गुरु को प्रणाम करता हूं ॥३२२॥

अलं विकल्पैरहमेव केवलो मयि स्थितं विश्वमिदं चराचरम् ।
इदं रहस्यं मम येन दर्शितं
स वन्दनीयो गुरुरेव केवलम् ॥३२३॥

नव, नवरूपमय, परमार्थ के एकमात्र रूप वाले, समस्त अज्ञानान्धकार को नष्ट करने में सूर्य, चैतन्यस्वरूप आपको नमस्कार है ॥३३०॥

स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ॥३३१॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम् ।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे ॥३३२॥
पुरस्तत्पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यादुपर्यधः ।
सदा मच्चित्तरूपेण विधेहि भवदासनम् ॥३३३॥

स्वतन्त्र, दया से युक्त शरीर वाले, शिवमय, भक्तों के अधीन रहने वाले, विवेकियों के विवेक, विचारकों के विचार प्रकाशकों के प्रकाश, ज्ञानियों के ज्ञान (आपको) पार्श्व में, आगे, पीछे, ऊपर और नीचे नमस्कार करना चाहिए। सदैव मेरे चित्त को अपना आसन बनायें ॥३३१, ३३२, ३३३॥

टिप्पणी—श्लोक ३३१ से ३३३ तक एक वाक्य है।

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे ह्यानन्दविग्रहम् ।
यस्य सन्निधिमात्रेण चिदानन्दायते मनः ॥३३४॥

आनन्दविग्रह, परमानन्दस्वरूप श्रीगुरु को मैं नमस्कार करता हूं जिसके सामीप्यमात्र से मन चिदानन्दमय हो जाता है ॥३३४॥

नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं सहजानन्दरूपिणे ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।३३५।।

सहज आनन्द स्वरूप हे गुरु आपको नमस्कार हो जिसका वाणी रूपी अमृत संसार नामक विष को नष्ट करता है ।।३३५।।

नानायुक्तोपदेशेन तारिता शिष्यसन्ततिः ।
तत्कृपासारवेदेन गुरुचित्पदमच्युतम् ।।३३६।।

नाना उययुक्त उपदेशों के द्वारा सन्तान के समान शिष्यों को आपके द्वारा तारा गया और असारता के ज्ञान से गुरु के अविनाशी चेतन पद की प्राप्ति कराई गई ।।३३६।।

अच्युताय नमस्तुभ्यं गुरुवे परमात्मने ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय चिद्घनानन्दमूर्तये ।।३३७।।

अविनाशी, परमात्मा, स्वतन्त्र, चैतन्य और आनन्द की मूर्ति-स्वरूप हे गुरु, आपको नमस्कार है ।।३३७।।

नमोच्युताय गुरवे विद्याविद्यास्वरूपिणे ।
शिष्यसन्मार्गपटवे कृपापीयूषसिन्धवे ।।३३८।।

अविनाशी, विद्या और अविद्या को धारण करने वाले, शिष्य को सन्मार्ग पर लाने में पटु, कृपामृत के सागर गुरु को नमस्कार है ।।३३८।।

ओमच्युताय गुरवे शिष्यसंसारसेतवे ।
भक्ताकार्यैकसिंहाय नमस्ते चित्सुखात्मने ॥३३९॥

अविनाशी, शिष्य के लिए संसार को पार करने में सेतु के समान, भक्त के कार्यों को करने वाली एकमात्र शक्ति स्वरूप चैतन्य और आनन्दमय आप गुरु को नमस्कार है ॥३३९॥

गुरुनामसमं दैवं न पिता न च बान्धवाः ।
गुरुनामसमः स्वामी नेदृशं परमं पदम् ॥३४०॥

गुरुनाम के समान न देव (परमात्मा) है, न पिता है और न बान्धव हैं, गुरुनाम के समान स्वामी नहीं है, इस (गुरु नाम) परम पद के समान पद नहीं है ॥३४०॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नैव मन्यते ।
श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ॥३४१॥

एक अक्षर प्रदान करने वाले गुरु का जो सम्मान नहीं करता है, वह सैकड़ों श्वान इत्यादि की योनियों को प्राप्त कर चाण्डालों में (चाण्डाल योनियों में) उत्पन्न होता है। ॥३४१॥

गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता ।
गुरुमन्त्रपरित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३४२॥

गुरु के त्याग से मृत्यु होती है, मन्त्र के त्याग से द्ररिद्रता होती है, गुरु और मन्त्र का त्याग करने वाला रौख नरक को जाता है ।।३४२।।

शिवक्रोधाद्‌गुरुस्त्राता गुरुक्रोधाच्छिवो न हि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराज्ञां न लंघयेत् ।।३४३।।

शिव के क्रुद्ध होने पर गुरु रक्षा करता है, परन्तु गुरु के क्रुद्ध होने पर शिव नहीं रक्षा करते हैं। अतः पूर्ण प्रयत्न से गुरु की आज्ञा का लंघन न होने देना चाहिए ।।३४३।।

संसारसागरसमुद्धरणैकमन्त्रं ब्रह्मादिदेवमुनिपूजितसिद्धमन्त्रम् ।
दारिद्रचदुःखभवरोगविनाशमन्त्रं
वन्दे महाभयहरं गुरुराजमन्त्रम् ।।३४४।।

जो मन्त्र संसार सागर से उद्धार करने वाला एक मात्र साधन है, जो ब्रह्मादि देवों और मुनियों के द्वारा पूजित सिद्ध मन्त्र है, जो दरिद्रता, दुःख, संसाररोग को नष्ट करने वाला मन्त्र है, महान भय को दूर करने वाले उस गुरुराज के मन्त्र को नमस्कार करता हूं ।।३४४।।

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रंशकारकाः ।
एक एव महामन्त्रो गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।।३४५।।

सात करोड़ महामन्त्र चित्त में भ्रम को उत्पन्न करते हैं, दो अक्षरों वाला "गुरु" (शब्द) ही एकमात्र महामन्त्र है । ।।३४५।।

एकमुक्त्वा महादेवः पार्वतीं पुनरब्रवीत् ।
इदमेव परं तत्त्वं श्रृणु देवि सुखावहम् ॥३४६॥

ऐसा कहकर महादेव ने पार्वती से पुनः कहा, हे देवि, सुखकारक इस परम तत्त्व को सुनो ॥३४६॥

गुरुतत्त्वमिदं देवि सर्वमुक्तं समासतः ।
रहस्यमिदमव्यक्तन्न वदेद्यस्य कस्यचित् ॥३४७॥

हे देवि ! संक्षेप में मैंने इस समस्त गुरुतत्त्व को कहा, यह गूढ़ रहस्य जिस किसी (अनधिकारी) से न कहना चाहिए । ॥३४७॥

न मृषा स्यादियं देवि मदुक्तिः सत्यरूपिणी ।
गुरुगीतासमं स्तोत्रं नास्ति नास्ति महीतले ॥३४८॥

हे देवि ! सत्यरूपिणी मेरी यह उक्ति असत्य नहीं हो सकती है, गुरुगीता के समान स्रोत पृथिवी तल पर नहीं है, नहीं है ॥३४८॥

गुरुगीतामिमां देवि भवदुःखविनाशिनीम् ।
गुरुदीक्षाविहीनस्य पुरतो न पठेत् क्वचित् ॥३४९॥

हे देवि ! संसार दुःख को दूर करने वाली इस गुरुगीता को गुरुदीक्षा रहित व्यक्ति के सामने कभी न पढ़ना चाहिए । ॥३४९॥

रहस्यमत्यन्तरहस्यमेतन्न
पापिना लभ्यमिदं महेश्वरि ।
अनेकजन्मार्जितपुण्यपाकाद्गुरोस्तु
तत्त्वं लभते मनुष्यः. ॥३५०॥

हे महेश्वरी ! यह रहस्य है, यह महान रहस्य है और पापियों को प्राप्य नहीं है। मनुष्य अनेक जन्मों में अर्जित पुण्यों से गुरुतत्त्व को प्राप्त करता है ॥३५०॥

यस्य प्रसादादहमेव सर्वं
मय्येव सर्वं परिकल्पितं च ।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं
तस्यांघ्रिपद्म प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥३५१॥

जिसके अनुग्रह से मैं ही सब हूं और सब मुझमें कल्पित हैं, (जिसको) सत् आत्मरूप से मैं इस प्रकार जानता हूं, उस (गुरु) के चरणकमल को मैं नित्य प्रणाम करता हूं। ॥३५१॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य विषयाक्रान्तचेतसः ।
ज्ञानप्रभाप्रदानेन प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥३५२॥

हे प्रभो ! अज्ञानान्धकार से युक्त, विषयों से आक्रान्त चित्त वाले मुझ पर ज्ञानप्रकाश का दान कर अनुग्रह करें ॥३५२॥

इति श्रीगुरुगीतायां तृतीयोऽध्यायः।

इति श्रीस्कान्दोत्तरखण्डे सनत्कुमारसंहितायां
उमामहेश्वरसंवादे श्रीगुरुगीता समाप्ता ॥

इति श्री गुरुगीतायां तृतीयोऽध्यायः ।

इति श्रीस्कान्दोत्तरखण्डे सनत्कुमारसंहितायां
उमामहेश्वरसम्वादे श्रीगुरुगीता समाप्ता ॥

श्रीगुरुगीता में तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

श्री स्कन्दपुराण के उत्तर खण्ड में सनत्कुमार संहिता में
उमामहेश्वर सम्वाद से युक्त श्री गुरुगीता समाप्त हुयी ॥